॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

स्वतंत्रता शौर्य के प्रतीक महाराणा प्रताप

सितंबर
१९७२
मूल्य १)

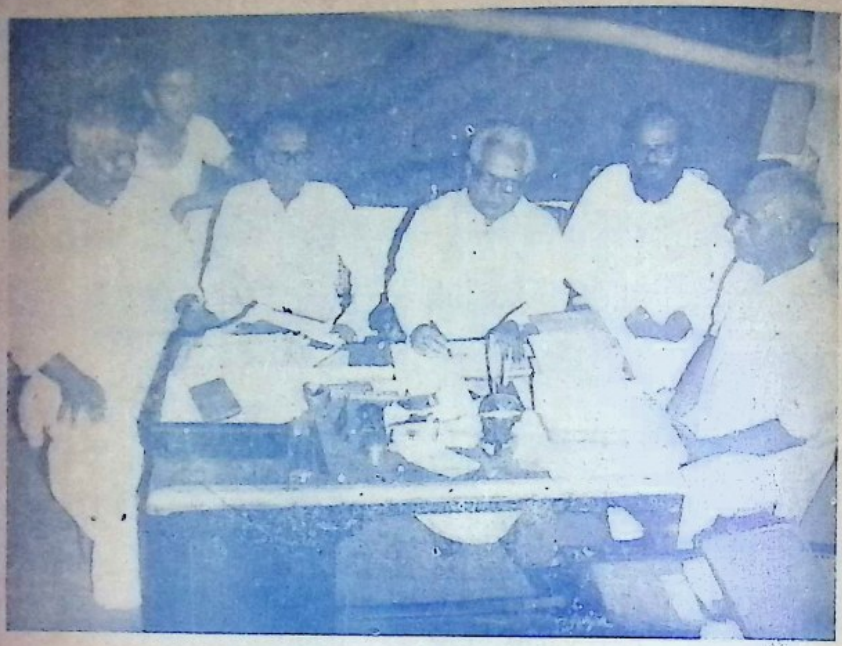

ऐतिहासिक घटना का आरंभ

संसार के इतिहास में प्रथम वार परम पिता परमात्मा की अमृत वाणी "वेद" के हिन्दी भाष्य का उद्घाटन नयी दिल्ली में सम्पन्न हुआ। आधुनिक काल में वेदों के परम विद्वान् आचार्य श्री वैद्यनाथ शास्त्री ने "दयानन्द-संस्थान" द्वारा एक जिल्द में प्रकाशित होने वाले चारों वेदों के भाष्य का प्रथम फार्म छापने का आदेश देकर इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना का आरभ कराया। इस अवसर पर श्री जगदेवसिंह शास्त्री "सिद्धान्ती", आचार्य जगदीश विद्यार्थी, श्री चन्द्रमोहन शास्त्री व पं० भारतेन्द्र नाथ भी उपस्थित थे। घरती के घर घर में 'वेद' पहुंचाने का यह आन्दोलन वेद भक्तों को कर्त्तव्य की प्रेरणा कर रहा है—

—सम्पादक

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

आय जनता का अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

जन-ज्ञान

(मासिक)

सम्पादक—

राकेश रानी

दूरभाष : ५६६६३६

पता—
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाई वाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक मूल्य—१२
विदेश में—एक पौंड
आजीवन— २०१

वर्ष ५ : अंक ५
सितंबर १९७२

अब न जागे तो जगाने, कौन तुम को आ सकेगा ?

सांस भी बाकी न होगी,
लाश जीवन की बनेगी,
'धर्म' अंतिम सांस लेकर,
आस सारी छोड़ देगा,
तब जगे तो, क्या बनेगा ?
कौन तब यह स्वर सुनेगा ?

सो रहे हो, मिट रहे हो,
लक्ष्य को भूले हुए तुम,
मृत्यु पथ पर चल रहे हो।
धड़कनें जब बन्द होंगी,
कारवाँ क्या तब सजेगा ?
कौन तब यह स्वर सुनेगा ?

जिन्दगी के तुम पुजारी,
प्यार कैसे भूल बैठे ?
सत्य के शाश्वत प्रसारक,
क्यों असत् से प्यार तुमको ?
प्रश्न तुमसे कर रहा हूं,
कौन उत्तर दे सकेगा ?

आत्मघाती ! छल प्रपंचक !
जाग जाओ, मत लुटाओ,
जो दिया था दान तुमको,
आज उसको मत गंवाओ !
तुम न जागे तो सभी कुछ
पुण्य धरती से मिटेगा ?
कौन तब यह स्वर सुनेगा ?

जागरण को पुण्य समझो,
जागरण को धर्म मानो !
जागरण ही वह वरण है,
धर्म जिससे बच सकेगा,
पाप जिससे जल सकेगा,
पुण्य जिससे बढ़ सकेगा !
जाग जाओ ! जाग जाओ !!
धर्म को फिर जगमगाओ ! जाग जाओ !

—भारतेन्द्रनाथ

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिए
धरती पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य
स्थापित करने के लिए

=००=

गीता प्रेस जैसा शक्तिशाली वैदिक
साहित्य प्रकाशन संस्थान बनाने के लिए
अधिक से अधिक सहयोग देकर

"दयानन्द-संस्थान" के सदस्य बनिये

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत—
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान,
नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६३६

वैदिक डायरी छप रही है—

१००) सैकड़ा ! अपना आदेश भेजें।

वेद भाष्य प्रकाशन के लिए

१०० व्यक्ति चाहिएँ
जो १००१) दे सकें

५ व्यक्ति चाहिएं
जो ५००१) दे सकें

२०० व्यक्ति चाहिएं
जो ५०१) दे सकें

आप इस पवित्र यज्ञ में क्या भेज रहे हैं ?

आज ही भेजिए

कम या अधिक पर भेजिए अवश्य

'वेद-गंगा' बहाने का
पुण्य प्राप्त कीजिए

ड्राफ्ट या मनिआर्डर–

"दयानन्द-संस्थान" के नाम भेजें

घर-घर में अध्यात्म गंगा बहाने के लिए

१. मां-गायत्री

गायत्री मंत्र पर महर्षि दयानन्द, श्रीपाद पं० दामोदर जी सातवलेकर, महात्मा आनन्द स्वामी, स्व० प्रभु आश्रित जी, व स्वामी समर्पणानन्द जी के विचार।

मूल्य ५०) सैकड़ा

२. ईश्वर भक्ति

स्व० स्वामी सर्वदानन्द जी की अनुपम प्रेरक महान् रचना प्रभु से मिलने का मार्ग दर्शन।

४०) सैकड़ा

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड के परिश्रम का परिणाम

एक अनुपम ग्रन्थ

Christianity and Vedas

वेद और बाइबिल का तुलनात्मक अध्ययन अब छप कर तैयार है—
गहरायी में पैठ कर कुछ जानने के इच्छुक मंगाएं और बाँटें

मूल्य १)५०

स्वामी दयानन्द

तीसरा संस्करण : ४० रंगीन चित्रों सहित

लागत १)५३ = बिक्री मूल्य १००) सैकड़ा

भारी संख्या में मंगाइए

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

इस अंक में पढ़िए

	पृष्ठ
१—हृदय मंदिर से	८
२—देवेन्द्र एम. भट्ट का उत्तर	१४
३—क्या वेद में इतिहास है ?—विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड	१७
४—स्व० और राष्ट्रीयत—डा० भाई महावीर संसदसदस्य	२७
५—श्री रजनीश के पाखण्ड का भंडा फोड़ने वाला लेख—धर्मपाल बी.ए.	३३
६—सृष्टि का अद्भुत रहस्य—रवीन्द्रकुमार	४१
७—पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण—प्रो० कीर्तिस्वरूप	४६
८—कहानी—सभ्यता का विध्वंश	५५
९—शिशु संसार	६१
१०—उपन्यास-धारावाहिक—मोपला (वीर सावरकर की अनुपमकृति)	७४
११—ईशोपनिषद्—पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार की लेखनी से प्रेरक व्याख्या	९१

"जन-ज्ञान" के सदस्य अपना कर्तव्य समझें

हमने चारों वेदों का भाष्य ३५) में देने की घोषणा अपने मान्य सदस्यों के वल पर की है। घर-घर में वेद पहुंचाने का आन्दोलन आरम्भ किया जा चुका है। वेद भाष्य छपना आरम्भ हो चुका है।

धर्म सत्य और वेद को रक्षा का दायित्व आप अनुभव करें। इतिहास बदलने के लिए कर्मक्षेत्र में आने का निमन्त्रण स्वीकार कर वेद भाष्य के प्रचार में लग जाइये !

२ लाख रुपया घाटे के लिए चाहिये। कार्य हो रहा है, वह रुकेगा नहीं, आप जागेंगे और हमारा बोझ बाँटेंगे। इसी विश्वास से अपने मान्य भाइयों और बहिनों को वेद पताका उठा कर विजय अभियान का निमन्त्रण दे रही हूँ—

—राकेश रानी

संपादकीय

आजादी की जयन्ती

शराब : गरीबी : सर्वनाश का बोलबाला

२५ वीं सालगिरह अंग्रेजों के जाने की, या भारत मां के मस्तक कटाने की या काले अंग्रेजों के राज्य पाने की। किसकी वर्षगांठ—रजत जयन्ती है यह ? कौन आज आनन्द में है जो इसे मनाए।

हैं कैसे नहीं, भारत के ३ प्रतिशत लोगों ने इन २५ वर्षों में देश को जो ऐब दिए हैं, इतिहास को जो ध्वंस किया है, भारतीयता की जो होली जलायी है उसकी मिसाल इतिहास के पन्नों में ढूंढ़ने पर भी आप को नहीं मिलेगी।

इन २५ वर्षों में पनपी है बे-ईमानी झूठ, रिश्वत, अंग्रेजियत और खुदगरजी' की भावना। नेता नाम के एक नए जन्तु ने नए रूप में शैतान के रूप में अपने को इन २५ वर्षों में विकसित किया है। नारे बाजी और प्रस्तावों की नींव पर भारत से गरीबी मिटाने के प्रयत्न में गरीब मिट गया है। समाजवाद की स्थापना के दुःस्वप्न ने समाज को तबाह कर दिया है।

शराब जिन्दाबाद ! आजादी जिन्दाबाद के नारे आज राजधानी की सड़कों पर साथ-साथ गूंजते हैं, हरयाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि सर्वत्र शराब फैशन बन गई है। महफिलें मीटिंगें, जमती नहीं जब तक शराब न हो।

गांधी के नाम पर शराब, कितना सुन्दर मजाक है। कितनी बड़ी विडम्बना है। आखिर राम राज्य की स्थापना शराब के प्रचार के लिए ही तो हुयी थी।

और हमारा शासन सैक्यूलर है, इसीलिए धर्म की अर्थी यहां से उठा दी गयी है। धर्म का काम भारत में क्या ? यहां धर्म नहीं रह सकता क्योंकि हमने एक नया भारत बनाना है, ऐसा भारत जहां धर्म न हो।

धर्म गया तो सत्य गया। सत्य गया तो फिर रहा क्या ? कौन सा जीवन का ऐसा क्षेत्र बचा है जहां धर्म का अंश अवशिष्ट मिल सके।

२५ वर्षों में जो नई पीढ़ी जन्मी है उसे यदि गुण्डा पीढ़ी (?) कहें तो क्या अत्युक्ति होगी? कालेज और विश्वविद्यालय में उच्छृंखलता के अतिरिक्त और कुछ सीखने वाले छात्र कितने हैं ? सड़कों, बाजारों में चारों ओर नया उच्छृंखल युवक जिसके हाथों में राष्ट्र की बागडोर आएगी—क्या बन चुका है।

"फैशन, विलासिता, और खाओ पिओ

मौज करो" की भावना ने भारत को India बना दिया है। चारों ओर सर्वनाश के ऐसे बादल उमड़े हैं कि लगता नहीं कि हम उस भारत के वासी हैं जहां राम, कृष्ण, दयानन्द, गांधी ने जन्म लिया था।

'स्व' मिटा कर 'स्वतन्त्रता' का क्या अर्थ ? इस पर चिन्तन का भी किसे अवकाश है। धर्म के ठेकेदार अधर्म के व्यापारी बन चुके हैं। सत्य के प्रसारक असत्य के पुतले दिखाई देते हैं। न्याय, दया केवल शब्दों में और सत्य केवल स्वप्न में दिखाई पड़ता है।

किसे कहूँ और कौन सुनेगा कि हमारे देश भारत को बचाना है तो धर्म को बचाना होगा। अधर्म को जला कर पाप मिटाना होगा ! अंग्रेजियत जब तक रहेगी, उच्छृंखलता बढ़ेगी, महानाश चलेगा, इसलिए देश की स्वतन्त्रता इष्ट है तो भारत को भारत बनाने का व्रत लो।

उपदेश दूसरों को नहीं, अपने को दो सुधार अपने घर से आरम्भ करो। कर सकते हो तो—

१—अंग्रेजी वेश भूषा का त्याग करो।
२—मम्मी-डैडी शब्दों को छोड़ो।
३—फैशन, विलासिता और प्रदर्शन छोड़ सादगी अपनाओ।
४—सत्य का अर्थ समझो और उस पर आचरण करो।
५—रिश्वत न लो न दो।
६—कड़ी मेहनत करो, ईमानदारी से जो काम आपको सौंपा गया है उसे पूरी ईमानदारी से निबाहो।
७—शराब को गौ-मांस की तरह त्याग दो।
८—धर्म के आधारभूत तत्वों को जीवन में धारण करो। स्वतन्त्रता की २५ वीं वर्ष गांठ पर यदि हम यह संकल्प ले सकें कि हम भारत को भारत बनाएंगे तो यह एक महान् उपलब्धि होगी। ● राकेश रानी

जन-ज्ञान के सदस्यों से

यदि आप वी० पी० मंगाने की आदत छोड़ दें तो—

वर्ष में हजारों रुपये बच सकते हैं

आप केवल इतना कीजिए कि शुल्क-समाप्ति का पत्र मिलते ही १२) मनीआर्डर से भेज दें।

या

यदि किसी कारण से भी सदस्य न रहना चाहें

तो

१० पैसे खर्च कर एक कार्ड द्वारा

अपने निर्णय से सूचित कर दें

यह आपका आगे बढ़ने में भारी सहयोग होगा

क्या आप ध्यान देंगे ?

—सम्पादक

क्या लेकर जाओगे ?

इस शरीर को छोडना होगा, जिस घर में, नगर में तुम रहते हो उससे नाता तोडना होगा, तुम्हें जाना होगा, दूर कहीं बहुत दूर जहां यह वर्तमान तुम्हारे स्मरण से भी बाहर होगा।

कब जाना पड़े, यह भी तो निश्चित नहीं, पर जाना निश्चित है, एक क्षण में या अनेक वर्षों में, पर जाना तो होगा ही, इसे कोई नहीं रोक सकता।

हम पूछते हैं जब जाओगे तो क्या लेकर जाओगे ? जो कुछ तुम जीवन में कमा चुके हो, या कमा रहे हो वह तुम्हारे साथ नहीं जाएगा। बैंक बैलेंस, कोठी, कार, जेवर, सब यहीं रहेंगे, सोचो मेरे भाई !

जब जाओगे तो क्या लेकर जाओगे ?

तुमने आज तक जो कुछ भी कमाया है वह इस शरीर के लिए, अपने लिए कमाने की तो तुमने कभी चिन्ता नहीं की। क्योंकि तुमने कभी सोचा ही नहीं कि यह सब तुम्हारा संग्रह कभी तुम्हारा च होगा।

तुम भटक चुके हो ! तुम्हें ज्ञात ही नहीं कि सत्य क्या है, क्योंकि तुमने सदा शरीर को ही सत्य माना है जब कि इससे अधिक क्षण भंगुर और कुछ भी नहीं है।

ज्ञान और अज्ञान में जो अन्तर है वही अन्तर तुम में और सत्य में है। अज्ञान की छाया में रहकर तुमने उन पदार्थों का संग्रह किया है जो तुम्हारे काम नहीं आएंगे किन्तु 'ज्ञान' तुम्हें वह संग्रह करने की प्रेरणा कर रहा है जो साथ जाएगा।

साथ ले जाने के लिए धन संग्रह करना आरम्भ कर दो भाई ! अब तो जान लो जीवन का सत्य और सत्य के प्रकाश में सत्य मार्ग पर चलो।

तुम्हारे वह कर्म जो तुम्हारे मन-मंदिर को स्वच्छ कर सकें, तुम्हें धनवान बनायेंगे। तुम्हारे वह संस्कार जिनसे मन को गति मिलती है तुम्हें बल देंगे। तुम अपने चारों ओर पड़े काले-काले पर्दों को मिटा सको, और जगमगा सको अपने को, ऐसे धन का संचय करो।

तुम ज्योतिर्मय बनो। प्रकाश का संचय करो। एकत्र करो वह गति, बल, ज्योति जो तुम्हें गरिमामय बना आलोक प्रभा से पूर्ण कर दे।

अन्धकार में डूब कर तुमने भौतिक धन एकत्र किया है, प्रकाश में तैर कर अब संग्रह करो वह ऐश्वर्य जो तुम्हारे साथ जा सके। अपने को जानो, शरीर को साधन मानो, ज्ञान के बल से अन्ध-

कार मिटा, चलो उस राह पर जहाँ पाप, अधर्म, और द्वेष दावानल का लेश भी शेष न रहे।

ब्रह्मांड में प्रकाश भी है और अन्धकार भी। सत्य पालन से प्रकाश और असत्य से अंधकार मिलता है। अन्धकार में विवेक नष्ट हो जाता है। इसलिए हे प्रभु पुत्र!

अपने को जान! अपनी सत्ता पहचान! तू शरीर नहीं, तू आत्मा है। अजर, अमर, अविनाशी! मूढ़! जड़ शरीर को अपना रूप मत समझ। तू महान है! इसलिए महत्ता की ओर बढ़! कमा वह धन जो तेरा हो, केवल तेरा। अन्यथा व्यर्थ जायगा यह नर जन्म!

फिर पछताए क्या होत है?
जब चिड़ियाँ चुग गई खेत!!

आर्य समाज क्या करे?

इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है। चारों ओर निराशा और आपाधापी का जो वातावरण है उसे दूर करना आवश्यक है। आर्यजनता में जो श्रद्धा है उसका लाभ तो नेता उठा लेते हैं किन्तु अपना स्वार्थ और पद का मोह वे छोड़ना नहीं चाहते।

सिद्धान्तों में अटूट एकता होते हुए भी पदलिप्सा और स्वार्थ ने हमें फूट पिशाचिनी के प्रपंच में फंसा रखा है।

क्या करें का उत्तर योजनाओं से देने का प्रयत्न किया जाता है किन्तु हम स्वयं भी योजनाओं के प्रति ईमानदार नहीं दीखते।

इस सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार कर दिशा निर्देशन की आवश्यकता है? किन्तु करे कौन? हमारी दृष्टि में आज स्थानीय आर्यसमाजों को अपनी शक्ति अपने क्षेत्र में ही केन्द्रित करनी चाहिए। महर्षि द्वारा निर्दिष्ट सिद्धांतों को पथ प्रदर्शक समझ अपने क्षेत्र के नागरिकों में उनका प्रचार करना चाहिए।

बड़े आर्यसमाजों को विशेष रूप से अपना दायित्व समझ ग्रामों में प्रचार की की ओर ध्यान देना चाहिए। कोई समय था जब हम धन की पवित्रता पर बहुत ध्यान देते थे। किन्तु आज हमारा धन व्यर्थ के कार्यों में, प्रदर्शन में व्यय हो रहा है सिद्धान्त प्रचार में नहीं।

राजनीति के प्रपंच से बच हम अध्यात्म की गंगा बहाएं। श्रद्धा-सत्य त्याग और पवित्रता के बल से हम आगे बढ़ें! सत्यार्थप्रकाश, ऋषि-जीवन और वेद का प्रसार यदि हम तीन वर्ष पूरे बल से करें तो भारत के आकाश में वैदिक विचारधारा की अमर पता का लहरा सकती है।

भाषण नहीं : काम

आज हम भाषण देने में जितने पटु हैं काम में उतने ही पिछड़े हुए। भाषण जोरों से देंगे पर करेंगे कुछ नहीं। हम कहने का मूल्य नहीं समझते।

बचपन में एक चौपायी सुनी थी—

तुलसी या संसार में,
बाप—बात हैं एक।
जाकी बात अनेक हैं,
वाके बाप अनेक।

हम जो घोषणाएं करते हैं, उन्हें पूरा नहीं करते। जो योजनाएं बनाते हैं उन पर अमल नहीं होता। परिणाम स्वरूप जन-मानस में हम पर से विश्वास समाप्त हो जाता है।

अपनी अकर्मण्यता जनित असफलता का दोष हम सदा दूसरों पर रख देते हैं पर कभी नहीं सोचते कि हमारा अपना अपराध क्या है?

३ वर्ष में सारा भारत आर्यसमाज के गीत गा सकता है। धरती पर आर्य सिद्धान्तों की जय-जयकार गूंज सकती है यदि हम भाषण न देकर काम करें।

काम-केवल काम, व्यवहार, आचरण ही हमें विजयी बना सकता है। असम्भव कुछ नहीं है यदि हम काम करें।

भाषणोंसे दुनियां को बहकाया जा सकता है बदला नहीं जा सकता। उपदेश सुधारक के व्यक्ति को बनाते हैं। इस लिए सुधारक बन कर दुनियां को सुधारो। नयो धरती पर नया सबेरा लाओ।

हमारी प्रचार यात्राएं

पिछले कुछ सप्ताहों में हमें दिल्ली से बाहर एक-दो दिन के लिए जाना पड़ा। १६ जुलाई को हम मेरठ गए। आचार्य जगदीश विद्यार्थी भी हमारे साथ थे। आर्यसमाज बुढ़ाना गेट, थापरनगर, और आर्यसमाज सदर में हमने उपस्थित आर्यजनता के सम्मुख अपनी वेद-भाष्य की योजना प्रस्तुत की तो सर्वत्र उत्साह लहर का अनुभव हुआ। आर्य श्रेष्ठ, श्री रघुनन्दन स्वरूप जी, श्री इन्द्रराज जी और श्री विश्वामित्र जी का स्नेह सदा मिलता रहा है और उन्होंने भाष्य के मेरठ में प्रचार का भी पूर्ण आश्वासन दिया।

साकेत मेरठ में जन-ज्ञान की आजीवन सदस्य श्रीमती सरोजजी का आतिथ्य तो सदा स्मरण रहेगा। वेदभाष्य के लिए उनका उत्साह भी प्रेरक था।

२९ जुलायी को शिमला में आर्यसमाज लक्कड़ बाजार की ओर से हमारे स्वागत में एक जलपान समारोह आयोजित किया गया। हम यहां भी आचार्य श्री जगदीश जी विद्यार्थी के साथ पहुंचे। हम दोनों का जो भाव भीना स्वागत वहां समाज के मंत्री श्री मुन्नीलाल जी शास्त्री व डी० ए० वी० स्कूल के प्रिंसीपल श्री सत्यप्रकाश जी ने किया वह हमारा नहीं वस्तुतः संस्थान के कार्यों का अभिनन्दन था।

आर्यसमाज लक्कड़ बाजार ने १००१) वेद भाष्य प्रकाशन में देकर अपना पवित्र आशीर्वाद दिया।

३० जुलाई की प्रातः आर्यसमाज लोअर बाजार में आचार्य जगदीश जी का भाषण हुआ और हमने वेद भाष्य की योजना प्रस्तुत की। यहां भी उपस्थित नर-नारियों नें अपूर्व उमंग प्रदर्शित की और कम से कम १०० वेद भाष्य मंगाने का आश्वासन दिया।

२ दिन शिमला में रहकर हमने अनुभव किया कि यदि इस अंचल में संगठित रूप से वैदिक धर्म के प्रचार को बल न मिला तो यह स्वर्गोपम भाग भी ईसाई प्रभाव से युक्त होकर हमारा सिर दर्द बन जाएगा।

यह प्रसन्नता का विषय है कि अब इस क्षेत्र में भी आर्यप्रतिनिधि सभा का गठन हो गया है, और इस के अधिकारी उत्साही और वेद प्रचार के लिए कृत-संकल्प हैं।

४ अगस्त को हमें अमृतसर जाना पड़ा। स्टेशन पर केन्द्रीय आर्यमहिला सभा की मंत्राणी माता आज्ञावती जी आशीर्वाद के लिए पधारीं। उनका स्नेह और ममत्व इतना प्रेरक है कि जीवन को नई प्रेरणा मिलती है।

ऐसी आदर्श कर्मठ महिलाएं देश में यदि ५-१० भी हो जायें तो सबका काया कल्प हो जाए। यहां ५ अगस्त को आर्यसमाज लोहगढ़ में, ६ अगस्त को आर्यसमाज लारेन्स रोड व श्रद्धानन्द बाजार में आर्य भाई बहनों से बातचीत का अवसर मिला।

हमने अपनी सारी योजनाएं प्रस्तुत कर प्रार्थना की है कि अमृतसर का कोई हिन्दू परिवार ऐसा न रहना चाहिए जिस के घर में वेद न पहुंचे।

भाईइन्द्रदत्त जी व उनके परिवार का स्नेह आतिथ्य तो वर्षों स्मरण रहेगा,

लगभग १०-१२ वर्ष के बाद अमृतसर जाना हुआ था फिर भी सभी का आशीर्वाद और ममत्व हमें मिला। माता सावित्री देवी जी (जो श्री पं० भगवद्दत्त जी की भावज हैं) भी आर्यसमाज में आयीं और हमें अपना आशीर्वाद दिया।

अमृतसर जाकर तो ऐसा लगा जैसा कि हम अपने घर में पहुंच गए। माता आज्ञावती जी ने ऐसे विदा दी, जैसे अपने सगे पुत्र को मां देती है। उनका यह प्यार-दुलार हम संभाल सकें—कर्तव्य पथ पर बढ़ते जाएं, प्रभु से यही प्रार्थना है।

वेद-प्रचार का शंख हमने बजा दिया है। संसार के अन्धेरे को मिटाने का व्रत हमने लिया है। यह काम ऐसा है जैसे चींटी हिमालय उठाने की सोचे। फिर भी हमें अपने प्रभु पर, आर्यजनता पर अडिग विश्वास है।

हमारा लक्ष्य केवल वेदभाष्य का प्रकाशन नहीं अपितु घर-घर में वेद की प्रतिष्ठा करना है। हम तो मानव मात्र के धर्म ग्रन्थ के रूप में वेद को संसार के प्रत्येक मनुष्य के हृदय मन्दिर में पहुंचाने का लक्ष्य लेकर चले हैं।

हम चल रहे हैं, चलते रहेंगे। बिना साधनों के भी काम आरम्भ कर दिया है। अब आर्यजनता सोचे अपना कर्तव्य और अगर हमारा लक्ष्य ठीक समझे तो उदारता से, उमङ्ग से हमें सहयोग दे।

महानाश की धरती पर निर्माण के स्वर गुंजाने हम निकले हैं, अधर्म को मिटाकर धर्म के प्रचारका हमारा निश्चय यदि आपका भी निश्चय बन जाए तो धरती पर अधर्म नहीं रहेगा।

—भारतेन्द्रनाथ

दयानन्द संस्थान के वेद-प्रचार यज्ञ में प्राप्त आहुतियां

१—श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना (अंग्रेजी सत्यार्थप्रकाश हेतु)	३६००.००
२—रा. सा. चौ. प्रतापसिंह जी (वेदभाष्य हेतु)	२५०० ००
३—श्री मनोहर विद्यालंकार, दिल्ली	१००१.००
४—श्री ओ. पी. गोयल, दिल्ली	१००१.००
५—आर्यसमाज, लक्कड़ बाजार, शिमला	१००१.००
६—श्रीमती माता जानकीदेवीजी वा श्री किशनदासजी दिल्ली की स्मृति में	५०१.००
७—डा. जगन्नाथ जी व श्रीमती भगवती देवीजी	५०१.००
८—श्री राजेन्द्रकुमारसेठी, बम्बई (ईश्वर भक्ति के लिए)	३००.००
९—आर्य स्त्री समाज, लोहगढ़, अमृतसर	२०१.००
१०—डा. दुर्गादासजी, कानपुर	२५१.००
११—श्री कृष्णलाल पोद्दार, कलकत्ता (वेदामृत के लिए)	२०००.००

सभी का धन्यवाद—अध्यक्ष

वेद पुकारेंगे.....तो !

'वेद' आप का धर्म ग्रन्थ है। वेद संसार के इतिहास का आदि ग्रन्थ है। 'वेद, संसार के सारे सत्य ज्ञान का आदि स्रोत है।

परम पिता परमात्मा द्वारा प्रदत्त आदि सृष्टि का प्रेरक ज्ञान 'वेद' धरती भूल चुकी है। नाना प्रकार के मनुष्य कृत ग्रन्थ फैल रहे हैं मनुष्य पशु बन रहा है।

महर्षि दयानन्द ने कहा था कि "**वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।** 'वेद' का प्रचार प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।

— आज यह परम धर्म आप को जगाना चाहता है।
— आप की निन्द्रा भंग कर आप को उठाना चाहता है।
— संसार के घर घर में 'वेद' पहुंचाने का अभियान हमने आरम्भ कियाहै।
— अज्ञान को हटाने के लिए वेद प्रकाश फैलाने का हम ने व्रत लिया है।

क्या आप जागेंगे नहीं। अब भी सोते रहेंगे ? सुनिए ध्यान से वेद आप को बुलाते हैं। उन का निमंत्रण स्वीकार करो और वेद को घर घर में पहुंचाने में लग जाओ! संसार के इतिहास में पहली बार चारों वेदों का भाष्य एक जिल्द में छप रहा है। छपना आरम्भ हो चुका है। ८०) के लगभग लागत का ग्रन्थ केवल ३५) में देने की हमने घोषणा की है आप के बल पर, वेद भक्तों के बल पर—

आज तक आर्य जनता से हमने, जब भी जो सहयोग चाहा है वह हमें मिला है। तो क्या इस बार नहीं मिलेगा ?

१५ सितंबर आ रहा है।

१५ सितंबर तक वेद भाष्य प्रकाशन के सारे साधन पूरे हो जाने चाहिएँ। हमें आप की श्रद्धा पर उत्साह पर विश्वास है। सोचने का समय नहीं, ४ लाख रुपया आपने इकट्ठा करना है। २ लाख मूल्य का २, लाख दान का।

कार्य आरम्भ हो चुका, अब आप की आहुति की प्रतीक्षा है।

— अधिक से अधिक दान देकर यश और पुण्य प्राप्त कीजिए—
— अपनी ओर से अधिक से अधिक व्यक्तियों का दान भिजवाएं।
— आर्य समाजें सारा काम छोड़ वेद को घर घर पहुंचाने का संकल्प लें

हम ने आज तक कोई ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की जो पूरी न की हो। और आज जब प्रभु की वाणी के प्रसार का प्रण हम ने किया है तो वह भी पूरा होगा।

५०० फार्म २००० पृष्ठ छपने हैं। १ फार्म प्रतिदिन छप रहा है। १५ सितंबर के बाद गति दुगनी कर देनी है। ताकि जल्दी से जल्दी ग्रन्थ आपके हाथ में हो।

आर्य बन्धुओ ! वेद भक्तो ! माताओ ! बहनो ! और भाइयो !

उठो पूरी शक्ति से और घर घर में 'वेद भाष्य' पहुंचाने का व्रत लो।

सारे देश में तेज आन्दोलन चलाओ। वेद प्रचार का, ताकि अंधेरा भागे, प्रकाश फैले और मनुष्य मनुष्य बन कर संसार को स्वर्ग बनाए ;

वेद भाष्य छप रहा है। ज्ञान गंगा बहने जा रही है। दयानन्द के अनुयायियो ! दयानन्द का, गुरु का, अधूरा कार्य पूरा करने में हम लगे हुये हैं आओ हमारे साथ, ताकि धरती के हर मंदिर, मस्जिद, गुरु द्वारे, गिरजा-घर पर हम ओ३म् की पावन पताका लहरा सकें— —भारतेन्द्रनाथ

देवेन्द्र एम० भट्ट को उत्तर ...

जयसिंह गणित विभाग
सम्राट अशोक टैक्निकल इन्स्टीट्यूट
विदिशा (म० प्र०)

मैंने जून १९७२ का जनज्ञान का अंक पढ़ा जिसमें 'सम्पादक के नाम पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत श्री देवेन्द्र एम० भट्ट, ३५-चाँदी बाजार, जामनगर द्वारा लिखित पत्र पढ़ने को मिला। पत्र के अन्त में देवेन्द्र जी ने उत्तर की प्रतीक्षा भी लिखी है। पत्र पढ़कर ही मुझको यह सब कुछ लिखने के लिए विवश होना पड़ा। आशा है कि देवेन्द्र जी इसको पढ़कर मनन करेंगे।

पत्र को पढ़ने मात्र से ही एक गैर आर्य समाजी भी श्री देवेन्द्र की मानसिक प्रवृत्ति व ढिलाई का अन्दाजा लगा लेता है। पत्र के अन्दर ऐसी-ऐसी अभद्र बातें आपने लिखी हैं कि शायद ये बातें एक शिक्षित दिमाग की उपज नहीं हो सकती हैं। कुछ भी हो मैं उनके प्रति ऐसे शब्दों का प्रयोग न करते हुये हर बात का उत्तर देने की कोशिश करूंगा।

जब में बी० एस० सी० में पढ़ता था तो मुजफ्फरनगर (यू० पी०) में मेरा एक class fellow था जिसका नाम लक्ष्मणसिंह था। मेरे वह साथी chain smoker थे तथा नास्तिक किस्म के थे। वे ईश्वर सत्ता में विश्वास भी नहीं करते थे तथा डार्विन के विकासवाद में विश्वास करते थे। मेरी और उनकी बहुत ही गहरी दोस्ती थी और है। जब हमने B. Sc. प्रथम वर्ष पास किया तो मेरी उसकी मुलाकात फिर हुई तो मैंने उसमें परिवर्तन पाया। वह उपासना करता था, बीड़ी-सिगरेट छोड़ दिया। मैंने यह सब पूछा तो उसने मुझको आनन्द मार्ग के बारे में बतलाया। मैंने फिर उपासना पद्धति के बारे में पूछा तो वह कहने लगा कि यह तो हमारे आचार्य ही बता सकते हैं हमको तो गुप्त रखने के आदेश हैं। हमने कहा क्यों भाई क्या ईश्वर के यहाँ भी corruption चलाते हो जो उपासना पद्धति में भी चोरी और क्या तुम ईश्वरीय सत्ता को मानते हो अब ? उस समय उनसे जवाब नहीं बना। कुछ समय पश्चात् मैं सहारनपुर (यू० पी०) में पढ़ने लगा तथा वह वहीं पर रहा। अर्थात् मु० नगर में) मैंने मु० नगर जाकर देखा तो उसका पता ही नहीं वह घर से चला गया घर वाले परेशान। उस बेचारे के घर की आर्थिक हालत भी नाजुक थी। वह गया कहाँ ? वह गया आनन्द मार्गियों के साथ। फिर वह मुझको अप्रैल १९७० में जब

वह मुझसे घर ही मिलने आया तो मिला, जटा बढ़ाये, भगवे वस्त्र पहने, दाढ़ी रक्खे हुये, सिर पर सिक्खों वाली पगड़ी, हाथ में सिर से भी ऊँचा डंडा तथा थैला लिए। मैं पहले पहचान नहीं सका परन्तु बाद में पहचान गया। उसने एक-दो वाक्य अंग्रेजी में कहा मैंने अंग्रेजी में ही उत्तर दे दिया तब हम गले मिले। दोस्ताना तरीके से बात हुई। हमारा अन्दाजा ठीक निकला वह वास्तव में आनन्द मार्ग के ही चक्कर में आ गया था। हमने पूछा अब तुम्हारा क्या नाम है तो उसने बतलाया आचार्य कर्मेश्वरानन्द अवधूत। फिर ऐसे बात ही हंसी मजाक की होती रही तो हंसी-हंसी में हमने पूछा कि खूब मजे से रहते होगे। बोले बेहद, इतने आराम से तो पी० एच० डी० करके सर्विस करने से भी न रहते। अब मैं श्री देवेन्द्र जी से पूछता हूँ कि क्या ये ऐसे-ऐसे ही लोग आपके आचार्य व अवधूत बने हैं। ये अल्पशिक्षित नहीं तो क्या हैं? यही नहीं फिर मेरी अन्य विषयों पर चर्चा हुई उसको मालूम हुआ यह आर्य समाजी है थोड़ा बहुत उसने झक किया बाद में वैदिक व वैज्ञानिक अकाट्य प्रमाणों के सामने उसको चुप होना पड़ा। उसी से हमको अन्य पोल खातों का पता चला जिनके कारण आनन्द मार्ग को उत्तरी भारत के अधिकतर हिस्सों से बोरिया-बिस्तर बांधना पड़ा। मु० नगर में जहाँ आनन्द मार्ग ने पूरे पैर जमा लिये थे वहाँ पर आज नाम निशान भी नहीं। आखिर क्यों? यह इसलिए कि आनन्द मार्ग के अवधूत जो अपने को ब्रह्मचारी कहते हैं दिन भर की थकान को अपने बंगलों में नौजवान सुन्दर लड़कियों के साथ रात्रि में रंगरेलियां करके उतारते हैं। जिस आनन्द मार्ग के आचार्य अपनी शिष्याओं के साथ ऐसा करते हों क्या वह चलेगा? मुझे इसमें सन्देह है। यही एक विशिष्ट कारण था कि मु० नगर व मेरठ जैसी जगहों से ये अवधूत जान बचाकर भागे। और यही कारण इसमें जाने का मेरे उस साथी का था कि अच्छी प्रकार चेले-चेलियां मिलेंगी सेवा करने को तथा अन्य कृत्योंको तथा ठाठ करने को वरना अभी तक भी शायद उसको सर्विस न मिल पाती। अब मैं श्री देवेन्द्र जी से पूछता हूँ कि हम आर्य समाजी तुम आनन्द मार्गियों से कितनेअन्तर पर हैं। हमारे यहाँ चेले-चेलियों से भ्रष्ट व्यापार तो नहीं। हमारे आचार्यलोग तुम्हारे आचार्यों की तरह अल्प शिक्षित तो नहीं। मैं एक बात और बता देनाचाहता हूँ कि आर्य समाज में आचार्य आनन्द मार्ग की तरह आसानी से नहीं बन सकता बल्कि कठोर परिश्रम द्वारा शिक्षा व त्याग हासिल करके ही बनता है। आनन्द मार्ग की तरह गुलछर्रे उड़ा कर अवधूत नहीं बनते बल्कि त्याग, तपस्या, जमीन पर बैठकर, लेटकर परिश्रम से अध्ययन करने के बाद ही आचार्य बनते हैं।

दूसरी बात देवेन्द्र जी कहते कि आर्य समाज मृतप्राय हो गया है। यहाँ मुझको एक कहावत याद आ गई 'तुझको पराई क्या पड़ी अपनी निमेड़ तू'। हमको ऐसा लगता है कि देवेन्द्र जी उल्टा कह गये हैं। आज विश्व भर में लगभग ४५०० (साढ़े चार हजार) आर्य समाजें हैं जिनके अभी लगभग पाँच छः करोड़ सदस्य हैं। आर्य समाज को स्थापित हुये ९७ वर्ष हुये हैं। इतनेथोड़े समयमें इतनी वृद्धि मैं समझता हूँ कि कम नहीं है। अभी दिन प्रतिदिन नई आर्य समाजें खुलरही हैं तथा नया शिक्षित वर्ग आर्य समाज में आ रहा है। यह मैं मानता हूँ कि नवयुवक कम आ रहे हैं क्योंकि वे आसान व आरामदायक रास्ता ईश्वर तक पहुँचने का चाहते हैं। वैज्ञानिक युग है हर चीज इन्सान के आराम के लिए तैयार की जा रही है अतः नवयुवक भी ईश्वर प्राप्ति तथा शांति के लिए आरामदेह मार्ग ही चाहता है। परन्तु ईश्वर व शांति का मार्ग इतना सहज व आरामदेह नहीं है जितना कि वह चाहता है इसी कारण नव-

युवक आर्य समाज की तरफ अपेक्षाकृत कम चलने की कोशिश करते हैं क्योंकि यह सच्चा मार्ग बतलाता है जो कठिन त्याग-तपस्या के बिना तय नहीं होता। दूसरी ओर आनन्द मार्ग गुलछर्रे उड़ाते हुये शांति प्राप्ति का दावा करके देवेन्द्र जी जैसे लोगों को बहकाना है जो बगैर कुछ करे धरे मौज उड़ाना चाहते हैं और इसी वजह से वे पत्र में गाली गलौच से पेश आये हैं। मैं यहाँ की स्थानीय आर्य समाज में देखता हूं कि भारी संख्या में पोस्ट ग्रेजुएट व इंजीनियरिंग कालेज के लड़के व अध्यापक सत्संग व सन्ध्या आदि में आते हैं तथा आर्यसमाज का भारी कार्य करते हैं। एक तरफ तो हम यह हालत देखते हैं और दूसरी तरफ देवेन्द्र जी आर्य समाज को Dead Organization की संज्ञा देते हैं मुझको देखकर हैरान होना पड़ता है उनकी बुद्धि को। काश ! देवेन्द्र जी यह पत्र मार्च या अप्रैल में जन-ज्ञान को लिखते तो मैं उनको अलवर (राजस्थान) जाकर विश्व आर्य सम्मेलन देखने की सलाह देता जिससे उनको मालूम पड़ता कि आर्य समाज Dead Organization नहीं बल्कि Life Organization है। मैं देवेन्द्र जी के उपर्युक्त मत से सहमत इसलिए भी नहीं हूं कि मैं देखता हूं कि रोजाना कम से कम २—४ नई आर्य समाजें स्थापित होती ही रहती हैं। करीब ८—१० आर्य समाजें तो मैंने ही अभी हाल ही में स्थापित की हैं जिनमें अधिकतर विद्यार्थी व अध्यापक वर्ग ही हैं। मैं स्वयं भी २६ वर्षीय नवयुवक हूँ।

एक अन्य विशेष बात श्री देवेन्द्र जी लिखते हैं कि आनन्द मार्ग तर्क संगत व वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, आर्य समाजी वेद के नाम पर लूट रहे हैं आदि आदि। मैंने अपने उस साथी से काफी चर्चा भी की तथा कुछ दार्शनिक पुस्तकें भी देखीं जो इनके गुरु आनन्द मूर्ति (प्रभात रंजन सरकार) के द्वारा लिखित थीं। देखने पर मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आर्य समाजी क्या बल्कि आनन्द मार्गी "New Philosophy" के नाम पर देवेन्द्र जी जैसे पढ़े लिखे लोगों का बेवकूफ बना रहे हैं। उसमें कोई वैज्ञानिक नहीं दिखाई पड़ता। दूसरी ओर वैदिक मत पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। मैं इसके अनेक उदाहरण यदि देवेन्द्र जी चाहें तो दे सकता हूँ। मैं भी विज्ञान का छात्र रहा हूँ। यह भी नहीं कि बिल्कुल प्राइमरी स्टेज तक ही बल्कि B. Sc. तक फिजिक्स, केमिस्ट्री व मैथेमैटिक्स पढ़ा, फिर एम० एस० सी० भी एप्लाईड मैथेमैटिक्स से फिजिक्स के स्पेशल पेपर लेकर प्रथम श्रेणी में भारत के सर्वोत्तम इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय, (रूड़की वि. वि. यू. पी.) से पास किया और अबपी० एच० डी० भी कर रहा हूं। इस प्रकार इतना परिचय देने पर मैं समझता हूं कि शायद विज्ञान की काफी बातें समझता हूँ। वैदिक दर्शन सभी वैज्ञानिक खोजों की पूरी थ्योरी देता है। तनिक दर्शन शास्त्र को पढ़ो तो सही। आनन्द मार्ग के पास तो दर्शन शास्त्र की छाया भी नहीं आई यदि सही माइनों में देखा जाये तो आनन्द मार्ग नहीं बल्कि वाम-मार्ग है। यदि देवेन्द्र जी को अपने दर्शन पर गर्व है तो पत्र द्वारा एक—दो बातें 'सरकार' जी की दार्शनिक पुस्तकों से देखकर हमसे बात तो करें। देखें आपका वैज्ञानिक दृष्टिकोण। मुझको तो ऐसा प्रतीत होता है कि शिष्यों को तो क्या उनके गुरु आनन्द मूर्ति जी को भी दर्शन शास्त्रों की झलक भी नहीं लगी है।

देवेन्द्र जी बहन राकेश रानी जी को लिखते हैं कि आनन्द मूर्ति जी की शरण में आ जाओ, समय रहते चेतो आदि आदि। यहाँ पर मैं देवेन्द्र जी से केवल

इतना कहना चाहता हूं की आपने जो महर्षि स्वामी दयानन्द व आर्य समाज के आचार्य आदि को अपशब्द कहे हैं सो तो ठीक है यह तो आपकी बुद्धि का दिवालियापन है। लेकिन मैं यह कहता हूं कि स्वामी जी की पहुँच को तो सारे आनन्द-मार्गी एक हजार जन्म लेकर भी नहीं पहुंच सकते क्योंकि उनका जीवन त्याग, तपस्यामय था जबकि तुम्हारा अय्याशी का नाम ही आनन्द मार्ग है। स्वामी जी को तो बात ही दूर की है यदि शंका मिटानी है, अपने दर्शन पर गर्व है तो एक दो शास्त्रार्थ आदि का प्रबन्ध करके दो हाथ तो करो उनके शिष्यो से। आनन्द मार्गियों के दर्शन शास्त्री के छक्के तो आर्य समाज का मैं टूटा फूटा सेवक भी छुड़ाने की हिम्मत रखता हू और यदि यकीन नहीं है तो आजमाइश करके देख ली जाये। मुझको तलाश ही आप जैसे लोगों की है।

देवेन्द्र जी लिखते हैं महापुरुषों को कष्ट होते ही हैं इसी कारण आनन्द-मूर्ति जी जेल में हैं। ठीक है मैं मानता हूं कि महापुरुषों को कष्ट होते हैं, मौत से खेलते हैं परन्तु कोई महापुरुष हो तभी तो। क्या आनन्द मूर्ति जी कोई योगी हैं। जो एक दो क्रियाएं वे करते हैं उनको तो साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। जेल में वे ऐसे नहीं ही गये बल्कि खूनी अपराधी के रूप में गये। क्या आपको समाचार पत्रों के वे समाचार देखने को नहीं मिले जिनमें आनन्द मूर्ति जी पर अपराधी होने का आरोप लिखा था ? अपराधी भी ऐसे कि जिन्होंने कई अपने शिष्य अवधूतों को मौत के घाट उतारा था क्योंकि वे आनन्द मार्ग छोड़ कर उसका भंडाफोड़ करने जा रहे थे। क्या आपको नहीं मालूम उन खबरों का कि आनन्द मूर्ति जी के कार्यालय और निवास स्थान से अमरीकी जासूसी विभाग के कागजात पकड़े गये हैं ? बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि देवेन्द्र जी जैसे पढ़े लिखे नवयुवक गलत मार्ग पर चलकर ऐसे देशद्रोही व्यक्ति को महापुरुष की संज्ञा देते हैं। क्यों महापुरुषों का भी अपमान करते हो ?

अन्त में मैं देवेन्द्र जी को फिर याद दिलाता हूं कि आनन्द मार्ग उत्तरी भारत में प्रायः समाप्त हो चुका है। इसकी कुछ शाखाएं चल रही हैं। जो दिल्ली अम्बाला व होशियारपुर मे हैं। वहां पर भी कुछ विशेष कारणों से। हरियाणा, उ० प्र०, राजस्थान, म० प्र० में प्रायः समाप्त है। जहाँ शुरू में स्कूल कालिज तक चल गए थे वहा आज नाम निशांन भी बाकी नहीं। अवधूत लोग आनन्द मार्ग छोड़ कर शादियाँ करके गृहस्थ चला रहे है क्योंकि वे असलियत को समझ गए हैं। ये कई केस म० प्र० व यू० पी० के कई स्थानों पर हुए हैं, रही गुजरात की बात, मैं समझता हूं 'श्रावण के अन्धे को हरियाली ही नजर आती है' क्योंकि आप आनन्द मार्गी हो गए हो तो आपको पूरा गुजरात क्या पूरा भारतवर्ष ही आनन्द मार्गी नजर आने लगा हैं जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको सद्बुद्धि दें ताकि आप भूले हुए वैदिक मार्ग पर वापिस आकर अपने पूर्वजों की मर्यादा को बरकरार रक्खें तथा राम,कृष्ण की इस पावन भूमि को आनन्द मार्ग, हंसा मत, सहज मार्ग आदि अवैदिक मार्गों से बचायें।

यदि किसी बात की शंका हो तो उपर लिखित पते पर पत्र व्यवहार करें।

अन्त में ईश्वर से प्रार्थना है कि वह वैदिक मत का बोलबाला व विधर्मियों का मुंह काला करें।

भारत के घर-घर में : परमात्मा की अमृत वाणी
'वेद' को प्रतिष्ठित कीजिए

●

संसार के इतिहास में प्रथम बार

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

एक जिल्द में हम भेंट कर रहे हैं

●

१. इस में मन्त्र का विषय होगा। २. मन्त्र स्वर सहित १६ प्वाइंट में होगा। ३. पदार्थ होगा। ४. भावार्थ होगा। ५. महर्षि दयानन्द का जो भाष्य उपलब्ध है वह सारा दिया जाएगा। शेष अन्य आर्य विद्वानों का दिया जाएगा। ६. कागज सर्वोत्तम बढ़िया, चिकना, सफेद ३२ पौंड इमिटेशन आर्ट होगा। ७. साइज १०×१५ इंच होगा। ८. पृष्ठ लगभग दो हज़ार होंगे।

लागत लगभग ८०) आएगी पर १५ सितंबर १९७२ तक
प्रचार के लिए—घर-घर में वेद पहुंचाने के लिए

केवल ३५) में दिया जाएगा

हम भारत की वेद भक्त जनता से प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी पूरी शक्ति से 'वेद' को घर-घर पहुँचाने में लग जाए

विनीत—

ओमानन्द सरस्वती, धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड, उदयवीर शास्त्री, हरिदत्त शास्त्री, एकादश तीर्थ, शिवकुमार शास्त्री संसद् सदस्य, प्रेमचन्द शर्मा राज्य मंत्री उत्तर प्रदेश, वीरेन्द्र एम०ए० (दैनिक प्रताप), हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार, जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती, रत्नसिंह एम० ए०, सत्यदेव विद्यालंकार, चौ० प्रतापसिंह, भारतेन्द्रनाथ, राकेश रानी, चन्द्रमोहन शास्त्री, लक्ष्मणकुमार शास्त्री, महेन्द्रकुमार शास्त्री।

मनोहर विद्यालंकार—संयोजक—जगदीश विद्यार्थी एम. ए.

वेद-भाष्य-प्रकाशन-समिति

दयानन्द-संस्थान

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

नोट—१५ सितंबर १९७२ के बाद कृपया ५१) भेंट मूल्य वेद भाष्य के लिए भेजें। यह सुविधा भी केवल दीवाली १९७२ तक रहेगी। पश्चात् जो लागत आएगी उसी पर दिया जाएगा। प्रकाशक

वेद-भाष्य प्रकाशन में सहयोग दीजिए

●●●

प्रभु के आशीर्वाद से वेद-भाष्य प्रकाशन का महान् कार्य आरम्भ कर दिया गया है—

आप श्रद्धा से, उत्साह से कर्त्तव्य पालन कीजिए।

१—अधिक से अधिक प्रतियाँ मँगाने के लिए शीघ्र से शीघ्र धन भेजिए।

२—महान् धर्म ग्रन्थ प्रकाशन के लिए अपनी सहायता एक साथ या प्रतिमास नियमित रूप से १ वर्ष तक भेजिए।

३—५०१) देने वालों का नाम प्रकाशित किया जाएगा।

४—१०००१) रु० देने वाले दानियों का चित्र ग्रन्थ में सादर छपेगा। आप भी आहुति देकर यश एवं पुण्य प्राप्त कीजिए।

५—५०००१) देने वालों का चित्र रंगीन बड़ा छपेगा।

दो लाख रु० का कागज तुरन्त लेना है। प्रतीक्षा का समय नहीं—कार्य आरम्भ किया जा चुका है। लक्ष्य पूर्ति के लिए हमें—

५०१) देने वाले २००) व्यक्ति चाहिएँ।

१००१) देने वाले १०० व्यक्ति चाहिएँ।

५००१) देने वाले ५ व्यक्ति चाहिएँ।

वेद पर श्रद्धा हो, प्रचार-प्रसार की भावना हो तो जो भी आप की श्रद्धा हो वह आज ही इस पते पर भेजिये—

फोन : ५६६६३६

दयानन्द-संस्थान

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

—विश्वनाथ विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

वेद

क्या वेद में इतिहास है ?

इस प्रश्न पर विद्वानों में गम्भीर विवाद है। पाश्चात्य प्रभाव संपन्न व्यक्ति 'वेद' में इतिहास मानकर उसकी महत्ता समाप्त करना चाहते हैं। प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने सत्य को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। —संपादक

१–वेद और ब्राह्मणः–

लेख में वेद का अभिप्राय ऋग् वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से है। पौराणिक विद्वान् ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहते हैं. और इस में वे कात्यायन का प्रमाण उद्धृत करते हैं, यथाः— **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों को वेद कहते हैं। मन्त्र से अभिप्राय है उपरिकथितऋग्वेदादि चार वेदों का। इन चारों वेदों में केवल मन्त्र ही हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन मन्त्रों की व्याख्या है। ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्ररूप नहीं हैं। "**ब्रह्म**" का अर्थ है मन्त्र अर्थात् मन्त्रात्मक चारों वेद। मन्त्रों का अर्थात् वेदों का तात्पर्य, साक्षात् और परम्परया, ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का प्रतिपादन है, इस लिये मन्त्र भाग को ब्रह्म कहते हैं। निरुक्तकार यास्काचार्य ने लिखा है **तद्यदेनांस्तपमानान् ब्रह्म स्वयम्भावभ्यानर्षत् ते ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति** (२। ३ ११), अर्थात् इन तप करते तपस्वियों को स्वयंसत्ता वाले नित्य ब्रह्म, अर्थात् वैदिक मन्त्र प्राप्त हुए, इस कारण ये तपस्वी ऋषित्व को प्राप्त हुए। इस उद्धरण में ब्रह्म का अर्थ है मन्त्रात्मक वेद। इस ब्रह्म, अर्थात् मन्त्रात्मक वेद की व्याख्या होने के कारण इन व्याख्याओं को ब्राह्मण कहते हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, परन्तु इन के व्याख्यानरूप **ब्राह्मण ग्रन्थ** मनुष्यकृत हैं। इसलिए ब्राह्मण ग्रन्थों में अनित्य इतिहास विद्यमान् हो सकता है, और है भी। परन्तु ऋग्वेदादि चारों वेद परमेश्वरीय हैं, अतः इन में अनित्य इतिहास सम्भव नहीं।

२–मन्त्रभाग ही वेद क्यों:–

प्रश्न होता है कि केवल मन्त्रभाग को ही वेद क्यों कहा जाय, ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद क्यों नहीं ? । इस का उत्तर बिल्कुल सामान्य है । वह यह कि मन्त्रभाग ने स्वयं अपने आप को वेद कहा है, और किसी भी ब्राह्मणग्रन्थ ने अपने आप को वेद नहीं कहा । युजर्वेद में मन्त्र हैं **वेदेन रूपे व्यपिवत्सुतासुतौ प्रजापतिः** (१९।६८) अर्थात् प्रजाओं के पति परमेश्वर ने, उत्पन्न [सुत] और अनुत्पन्न [असुत] अर्थात् अनित्य और नित्य तत्त्वों के स्वरूपों का ज्ञानामृत वेद द्वारा पिलाया है । अथर्ववेद में मन्त्र है **"यस्मात्यक्वादमृतं संबभूव, यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव । यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनोदनेनाततराणि मृत्युम्"** [४ । ३५ । ६] अर्थात् जिस परमेश्वर के सम्बन्ध में उपासक की परिपक्वनिष्ठा हो गई है । उस परमेश्वर से, परिपक्व निष्ठा वाले उपासक को, अमृत अर्थात् मोक्ष मिलता है । परमेश्वर गायत्री का अधिपति है, गायत्री द्वारा प्रतिपाद्य है । जिस परमेश्वर में विश्वरहस्य के स्वरूपों का वर्णन करने वाले वेद सदा विद्यमान रहते हैं, उसे ओदनरूप जान कर, मैं उपासक, मृत्यु से तर जाता हूं । इस मन्त्र में स्वयं वेद ने अपने आप को वेद कहा है ।

मन्त्र में परमेश्वर को **"ओदन"** [माता] कहा है । ओदन सात्विक अन्न है । अभिप्राय यह है कि जैसे ओदन शरीर की रक्षा, शरीर की वृद्धि, तथा शरीर के स्वास्थ्य का एक अविभाज्य घटक है, वैसे ही परमेश्वर आत्मिक रक्षा आत्मिक समुन्नति, तथा आत्मिक स्वास्थ्य का अविभाज्य घटक है । उपनिषदों में इसी दृष्टि से परमेश्वर को अन्न भी कहा है। यथा: **अहमन्नम् अहमन्नादः** [भृगु. ३ । ६] अर्थात् परमेश्वर अन्न है और अन्नाद है। भक्त लोग परमेश्वर की भक्ति में तन्मय हो कर आनन्दरस'-मय ब्रह्म का आस्वादन करते हैं, इस के आश्रय उन का आत्मिक जीवन फूलता-फलता है । इसलिए भक्तों के लिये परमेश्वर आध्यात्मिक अन्न है, ओदन है । और प्रलयकाल में सम्पूर्णरूप में तथा जगत् के स्थितिकाल में व्यष्टिरूप में, आंशिकरूप में, परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् का, तथा व्यष्टिजगत् का ओदन करता रहता है, अपने में विलीन करता रहता है, अतः परमेश्वर अन्नाद भी है, जगत्रूपी अन्न का अदन करता रहता है, भक्षण करता रहता है । अन्नाद की दृष्टि से उपनिषदों में परमेश्वर को "अत्ता" भी कहा है (वेदान्त १ । १ । ९७) ।

इसी प्रकार अथर्ववेद (१९।६८) में **"ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणिकृण्म"** तथा **"स्तुता मया वेदमाता"** (१९।७१), **"यस्मात्कोशादुभराय वेदय"** (१९।७२) के वेद और वेदमाता शब्दों द्वारा मन्त्रभाग को ही कहा है । मनुष्यसृष्टि के प्रारम्भ में जब वेद प्रकट हुए तब इस मन्त्रभागरूपी वेदों से भिन्न, इन से प्राचीन, और कोई साहित्य न था जिस की ओर, "वेद" पद निर्देश करता है । ब्राह्मणग्रन्थ वेदों के व्याख्याग्रन्थ हैं, अतः वेदों के पीछे रचे गए हैं । इस लिये मन्त्रभाग में पठित "वेद" शब्द मन्त्रभाग से भिन्न ब्राह्मणग्रन्थों का निर्देशक नहीं हो सकता । इसलिए **मन्त्र-ब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्** यह कथन अप्रामाणिक है । इसलिये "वेद और इतिहास" इस शीर्षक में केवल वेद अर्थात् मन्त्रभाग के ही सम्बन्ध में यह दर्शाया जायगा कि वेदों में अनित्य इतिहास की सत्ता नहीं हैं।

३–वेद नित्य हैं:–

वेद नित्य हैं । इन के साथ काल का सम्बन्ध नहीं । मनुष्य-सृष्टि के प्रारम्भ में इन का प्रादुर्भाव हुआ, नवीन रचना इन की नहीं हुई । परमेश्वर के ज्ञान में इन

वेदों की नित्य सत्ता है। इसलिये नित्य वेदों में अनित्य ऐतिहासिक घटनाओं का लेख नहीं हो सकता।

वेद ने स्वयं वेदवाणी को नित्य कहा है। यथा "**वाचा विरूपनित्यया** (ऋक्-८।७५।६) अर्थात् वेदवाक् (वेदवाणी) नित्य है, और यह वेदवाक् प्राकृतिक और आध्यात्मिक जगत् के विविधरूपों अर्थात् नानाविधि स्वरूपों का वर्णन करती है। जब वेदवाणी स्वयं अपने आप को नित्य कह रही है, तब वेद वाणी के नित्य होने में कोई शंका नहीं हो सकती।

इसी प्रकार वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करने वाला यास्काचार्य भी निरुक्त में वेदों को नित्य और पुरुष अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर की कृति मानता है। यथा "**पुरुषविद्यानित्यत्वात्कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे**" (१।१।२), अर्थात् परमेश्वर-पुरुष की विद्या अर्थात् ज्ञान नित्य है, इसलिए मनुष्यों के हितार्थ वेदों में मंत्रों का कथन है, ताकि मनुष्योचित कर्मसम्पत्ति का वे उपार्जन कर सकें। पुरुष शब्द का प्रयोग परमेश्वर के लिए भी होता है। युजर्वेद के ३१वें अध्याय में परमेश्वर-पुरुष का वर्णन है, इसी लिए इस अध्याय को "**पुरुष सूक्त**" कहते हैं। यास्काचार्य ने भी पुरुष शब्द का निर्वचन किया है, "**पुरुषः पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तयिरत्यन्तर पुरुषमभिप्रेत्य**" (निरुक्त २।१।३), अर्थात् जो जगत् में भरपूर है, तथा सर्वान्तर्यामी है, इस से परमेश्वर को पुरुष कहते हैं। अतः नित्य वेदज्ञान में अनित्य मानुष-इतिहास का वर्णन असम्भव है। यास्क के उपरिलिखित प्रमाण द्वारा यह बात भी परिपुष्ट होती है कि मन्त्र भाग को ही वेद कहते हैं। तभी **मन्त्रो वेद** यह कथन किया गया है।

पुरुषशब्द का प्रयोग प्राचीन साहित्य में, परमेश्वर के लिए हुआ, इस में निम्नलिखित प्रमाण भी हैं। यथा—**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः** (गीता) इस प्रमाण में परमात्मा को उत्तम-पुरुष कहा है तथा योग दर्शन में परमेश्वर को पुरुषविशेष कहा है। यथा—**क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः** (१।२४)।

४—वेदों का कर्त्ता कौन ?

१—वेदों के अन्तरीय प्रमाणों द्वारा यह निश्चय होता है कि वेद ईश्वरीय कृति है, मानव-कृति नहीं। इस सम्बन्ध में यजुर्वेद—अध्याय ३१, मन्त्र ७ निम्न-लिखित है,

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

मन्त्र में परमेश्वर को यज्ञ कहा है। यज्ञ में अग्नि में आहुतियां दी जाती हैं। परमेश्वराग्नि में, प्रलयकाल में, सब संसार की तथा समग्र वेदविद्या की आहुति हो जाती है। इसलिए "सर्वहुतः" शब्द का प्रयोग है। सृष्टिकाल में ऋग्वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद पुनः परमेश्वर से प्रकट होते हैं। अथर्ववेद को मन्त्र में "छन्दांसि" कहा है, क्योंकि अथर्ववेद में समग्र प्राकृतिक और आध्यात्मिक क्रियाओं का वर्णन है।

२—**यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही।**

एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः (अथर्व १०।७।१४)। अर्थात् मनुष्यसृष्टि के प्रारम्भ में जिन चार ऋषियों द्वारा चार वेद प्रकट हुए थे, ये चार ऋषि जिस परमेश्वर में आश्रय पाये हुए थे, तथा इन चारों ऋषियों

में से प्रत्येक ऋषि ने जिसमें आत्मसमर्पण किया हुआ था, हे उपासक ! तू उसे सर्वाधार तथा सर्वनियंता रूप से स्मरण किया कर (**स्कम्भि प्रतिबन्धे**), वह सर्वाधिक सुखमय है। इस मंत्र में भी परमेश्वर को ही चारों वेदों का आश्रय कहा गया है।

३—**तथा अपूर्वेणिषिता वाचः ता वदन्ति यथायथम् वदन्तीर्यत्र तदाहु ब्राह्मणं महत्**। (अथर्व १०।८।३३)। अर्थात् अनादि-परमेश्वर द्वारा वेदवाणियां प्रेषित हुई हैं, वे पदार्थों के यथार्थ स्वरूपों का वर्णन करती हैं, पदार्थों के यथार्थस्वरूपों का वर्णन करती हुई ये वेदवाणियां, प्रलयकाल में, पुनः जिसमें लीन हो जाती हैं, उसे महत्-ब्रह्म कहते हैं। मन्त्र में परमेश्वर को ब्राह्मण कहा है। ब्राह्मण का यहां अभिप्राय है 'ब्रह्म अर्थात् वेद का ज्ञाता'।

इस प्रकार वेद अर्थात् मंत्रभाग किससे प्रकट हुए, इस सम्बन्ध में वेदों का आत्मसाक्ष्य सर्वाधिक प्रमाण है, जैसे कि मजिस्ट्रेट के सामने व्यक्ति की आत्मसाक्षी सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। इसलिए वेदों की आत्मसाक्षी का बड़ा महत्त्व है।

४—इस सम्बन्ध में आदिश्री शंकराचार्य का प्रमाण भी बड़े महत्त्व का है। वेदान्त शास्त्र (१।१।३) सूत्र की व्याख्या में वे लिखते हैं कि **महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य, प्रत्यक्षविद्यास्थानोपबृंहितस्य, प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः, सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म**, अर्थात् महान् ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म है। यह ऋग्वेदादि शास्त्र अनेक विद्याओं से उपबृंहित है, प्रदीप की तरह सब ज्ञेय पदार्थों पर प्रकाश डालता है, तथा सर्वज्ञकल्प है और इस का कर्त्ता ब्रह्म है, परमेश्वर है। अतः संक्षेप में हमने देखा कि वेदों का कर्त्ता परमेश्वर है, वेद नित्य हैं, तथा मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में चारों वेदों का आविर्भाव हुआ था। ऐतिहासिक व्यक्तियां, जिनका कि इतिहास, ऐतिहासिक-विद्वान्, वेदोंमें दर्शाते हैं, वे तो वेदों के अविर्भाव के पश्चात् काल के हैं, अतः वेदों में उनका वर्णन असम्भव है। आदि के चार ऋषियों के सम्बन्ध में निरुक्तकार ने लिखा है कि **साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः, तेऽसाक्षात्कृतधर्मभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः** (१।६।२०), अर्थात् आरम्भ में जो ऋषि प्रकट हुए थे, जोकि परमेश्वर के मानस-पुत्र थे, उन्होंने मन्त्र प्रतिपादित तत्त्वों का, धर्म कर्मों का साक्षात् किया था। उन्होंने उपदेशों द्वारा अर्थात् मौखिक प्रवचनों द्वारा, उन लोगों को मंत्र प्रदान किये जिन्हें कि मंत्र प्रतिपादित धर्म-कर्मों का साक्षात् नहीं था। इस प्रकार आदि के चार ऋषियों को मंत्र तो साक्षात् हुए, साथ ही उन्हें मन्त्रप्रतिपादित विषयों के धर्मों का भी साक्षात् हुआ। हम लोग मंत्रों का स्वाध्याय करते हैं, हमें मन्त्र प्रतिपादित विषयों का केवल शाब्दिक ज्ञान होता है, उन का साक्षात् ज्ञान नहीं होता। परमेश्वर सम्बन्धी भक्तों द्वारा हमें परमेश्वर के गुणधर्मों का केवल शाब्दिक ज्ञान ही होता है, परमेश्वर का और उसके गुणधर्मों का साक्षात्कार नहीं होता। परन्तु आदि के चार ऋषियों को मंत्रों का भी साक्षात्कार हुआ था, और मन्त्रों में प्रतिपादित तत्त्वों तथा उनके गुणधर्मों का भी साक्षात्कार हुआ था। यास्कोक्त उद्धरण में धर्मन् शब्द गुण-कर्म वाचक है, मंत्र यदि शब्दात्मक हैं तो वे आकाश के धर्म हैं, और यदि मन्त्र का अर्थ है मननम् अर्थात् ज्ञान तो वे मन्त्र परमेश्वर के ज्ञान रूप हैं, क्योंकि परमेश्वर के ज्ञान में ज्ञानरूप से भक्त सदा विद्यमान रहते हैं, प्रलय काल में भी विद्यमान रहते हैं। आरम्भ के चार ऋषियों के हृदयाकाशों में हृदयस्थ

परमेश्वर ने मन्त्रों की ध्वनियां की थीं, या उनके मनों में मंत्रों को ज्ञानरूप में उन्हें दिया था।

५—पश्चात् काल में ऋषिः—

वैदिक सूत्रों और अध्यायों के शीर्षकों में जिन ऋषियों के नाम दिये रहते हैं वे पश्चात् काल के ऋषि हैं, अर्थात् मनुष्य सृष्टि के समय जिन चार ऋषियों द्वारा चार वेद प्रकट हुए थे उनके पश्चात् काल के ये ऋषि हैं। ऐतिहासिक दृष्टि वाले विचारकों का यह कहना है कि उन्हीं पश्चात् काल के ऋषियों ने, उन वैदिक सूत्रों, मन्त्रों और अध्यायों की रचना की है, जिनके शीर्षकों में इनके नाम मिलते हैं। युक्ति द्वारा यह कथन परिपुष्ट नहीं होता। यदि ये पश्चात् काल के ऋषि उन सूक्तों और अध्यायों के रचयिता या कर्ता हैं तो आरम्भकाल के ऋषियों द्वारा प्रकट किये गए वेद कौनसे हैं। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में भी कहा है कि—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥

अर्थात् परमेश्वर ने अग्नि, वायु और रवि अर्थात् आदित्य द्वारा तीन अनादि ब्रह्म अर्थात् तीन, वेदों को प्रकट किया। जब वेदों की सत्ता, शीर्षक-ऋषियों से पूर्व विद्यमान थी, तब ये शीर्षकऋषि उन दो सूत्रों, तथा अध्यायों और मन्त्रों के रचयिता कैसे हो सकते हैं। इन शीर्षक ऋषियों के सम्बन्ध में यास्काचार्य निरुक्तकार ने लिखा कि **ऋषिर्दर्शनात्** (निरुक्त २। ३। ११), अर्थात् ये ऋषि द्रष्टा हैं, रचयिता नहीं। दर्शनात् के दो अभिप्राय हो सकते हैं, एक यह कि इन्होंने मन्त्रों के दर्शन किये, और दूसरा यह कि इन्होंने मन्त्रार्थों के दर्शन किये, यदि अभिप्राय मन्त्रों के दर्शन का है तब भी मन्त्रों की सत्ता दर्शन से पूर्वकाल में माननी होगी, क्योंकि दर्शन पूर्व स्थित वस्तु का ही होता है। मन्त्रों को स्वयं रचकर शीर्षक-ऋषियों ने उस का दर्शन किया यह बात बन नहीं पाती। और यदि इन शीर्षक-ऋषियों ने मन्त्रार्थों का दर्शन किया तब भी मन्त्रों की सत्ता मन्त्रार्थों के दर्शन से पहिले माननी पड़ेगी।

ऋषिर्दर्शनात् इस कथन में निरुक्तकार का वास्तविक अभिप्राय यह है कि शीर्षक-ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टा है, मन्त्र द्रष्टा नहीं। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि **ननु पृथक्त्वेन मन्त्राः ? निर्वक्तव्याः, प्रकरणशः एव तु निर्वक्तव्याः न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा** (१३। १। १२), अर्थात् सूक्त आदि से अलग हुए मन्त्र का निर्वचन अर्थात् अर्थकथन नहीं करना चाहिए, अपितु प्रकरण के अनुसार ही अर्थकथन करना चाहिए। इन मन्त्रों में, अनृषि और अतपस्वी को तत्त्वार्थ का प्रत्यक्ष नहीं होता। 'एषु' का अर्थ है इन मन्त्रों में अर्थात् इन मन्त्रों में प्रतिपादित। अतः प्रतीत हुआ कि शीर्षक-ऋषि इन मन्त्रों में प्रतिपादित तत्त्वों का प्रत्यक्ष करते हैं, न कि मन्त्रों का। अतः शीर्षक-ऋषि मन्त्र द्रष्टा हैं, मन्त्र रचयिता नहीं। जब ये भक्त रचयिता हैं ही नहीं, तो भक्तों में इन द्वारा अनित्य इतिहास का प्रतिपादित किस प्रकार सम्भव है।

३—मन्त्रों के १००० ऋषिः—

ऋग्वेद ८। ३४। १६-१८ के तीन मन्त्र विचारणीय हैं। इन तीन मन्त्रों के ऋषिः एक हज़ार कहे गये हैं, यथा "सहस्रं वसुरोचिषोऽगिरसः"। मन्त्र निम्नलिखित हैं:।

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः। ओजिष्टमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥

य ऋज्रा वातरंहसो रुषास रघुष्यदः। भ्राजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥
पारावतस्य गतिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु। तिष्टं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥

इन तीन मन्त्रों में ७२ अक्षर हैं। परन्तु इन ७२ अक्षरों वाले तीनों भक्तों के ऋषि हैं एक हज़ार। एक-एक ऋषि के हिसाब में एक-एक अक्षर भी तो नहीं आता। हिसाब से लगभग एक-एक अक्षर के चौदह-चौदह ऋषि हो जाते हैं। इस दृष्टि में तो सम्भव है कि शीर्षक ऋषि मन्त्रार्थद्रष्टा हैं। भिन्न-भिन्न समयों में उत्पन्न ऋषियों ने भिन्न-भिन्न समयों में इन तीन मन्त्रों के रहस्यार्थों पर विचार किया हो या इनके रहस्यों का दर्शन किया हो। मन्त्र १६ में वसुरोचिषः नाम भी पठित है जो नाम कि कथित हजार ऋषियों का है। प्रतीत होता है कि हजार ऋषियों ने मन्त्रपठित को ही अपने उपनाम रूप में अपना लिया है। ये ऋषि अंगिरागोत्र के हैं, तभी इन्हें अंगिरसः कहा है।

इसी प्रकार ऋग्वेद ८। ६७। १-२२ के भी बहुतसे ऋषि कहे गये हैं। ऋग्वेद १०। १३७। १-७ के एक-एक में सात मन्त्र हैं, और प्रत्येक मन्त्र के अलग-अलग शीर्षक ऋषि हैं। वे हैं क्रमशः भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ। सम्भवतः ये ऋषि भिन्न-भिन्न काल के हैं। अतः निश्चय यही है कि शीर्षक-ऋषि केवल मन्त्रार्थद्रष्टा हैं, मन्त्रद्रष्टा नहीं हैं, और न मन्त्र रचयिता हैं। अतः मन्त्रों में अर्वाचीन काल का अनित्य इतिहास सम्भव नहीं, क्योंकि एक ही सूक्त में ७ मन्त्रों के ७ ऋषि हैं।

६—यजुर्वेद और पांच ऋषिः—

यजुर्वेद में पांच ऋषियों का वर्णन निम्नलिखित हैः—

१—वसिष्ठः ऋषिः प्राणं गृह्णामि (१३। ५४)।
२—भरद्वाजः ऋषिः प्राणं गृह्णामि (१३। ५५)।
३—जमदग्निः ऋषिः चक्षु गृह्णामि (१३। ५६)।
४—विश्वामित्रः ऋषिः श्रोत्रं गृह्णामि (१३। ५७)।
५—विश्वकर्मा ऋषिः वाचं गृह्णामि (१३। ५८)।

शतपथ ब्राह्मण और पांच ऋषि—

इसी प्रकार इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का निम्नलिखित लेख हैः—

१—प्राणो वै वसिष्ठः ऋषिः, यद्वै नु श्रेष्ठः तेन वसिष्ठः अथो यद्वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठ इति (८। १। १। ६)।
२—मनो वै भरद्वाजः ऋषिः, अन्नं वाजो, यो वै मनो बिभर्ति सो अन्नं वाजं भरति, तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः (८। १। १। ९७)।
३—चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः यदनेन जत्पश्यति अथो मनुते तस्मात् चक्षुः जमदग्निः ऋषिः (८। १। २। ३)।
४—श्रोत्रं वै विश्वामित्रः ऋषिः, यदेनेन सर्वतः शृणोति अथो यदस्मै सर्वतो भवति, तस्मात् श्रोत्रं विश्वामित्रः ऋषिः (८। १। २। ६)।
५—वाग् वै विश्वकर्मा ऋषिः वाचा होदं सर्वं कृतम्, तस्माद् वाग् विश्वकर्मा ऋषिः (८। १। २। ९७)।

१—चारों वेदों में तीन प्रकार की रचना है, गद्य, पद्य और गीतिरूप। इस त्रिविध रचना की दृष्टि से वेदों को तीन कहा गया है।

इस प्रकार यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में पाँच ऋषियों का वर्णन इस एक प्रकार का ही है। इन में (१) वसिष्ठ ऋषिः प्राण। (२) भरद्वाज ऋषिः मन। (३) जमदग्नि ऋषिः चक्षु। (४) विश्वामित्र ऋषि श्रोत्र। (५) विश्वकर्मा ऋषिः वाक् है।

(१) शतपथ ब्राह्मण में वसिष्ठ आदि नामों को संज्ञावाची (Proper nouns) नहीं माना, अपितु यौगिक माना है। वसिष्ठ ऋषि प्राण है, क्योंकि जीवन में प्राण सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, और जीवन में इस के वसे रहते शरीर में इन्द्रिय आदि शक्तियां वसी रहती हैं, प्राण के निकल जाने पर सब शक्तियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। इसलिए प्राण वसिष्ठ ऋषि कहा है।

(२) भरद्वाज ऋषि है "मन"। क्योंकि भरत् का अर्थ है भरना, धारण करना, और वाज का अर्थ अन्न। जब तक शरीर में मन स्वस्थ रहता है तभी तक शरीर अन्न का ग्रहण कर सकता है। अतः मन है भरद्वाज ऋषि।

(३) जमदग्नि ऋषि है चक्षु अर्थात् आँख। जमदग्नि पद को शतपथ ब्राह्मण ने जगद् (जगत्) और मन् (मन) में विभक्त किया है, और अर्थ किया है कि मनुष्य चक्षु द्वारा "जगत्" को देखता है, तत्पश्चात् "मनन" करता है। अतः "चक्षु" जमदग्नि ऋषि है।

(४) विश्वामित्र ऋषि है श्रोत्र अर्थात् सुनने की शक्तिवाला कान, क्योंकि यह जब सब बातों को प्रेम से सुनता है, सहानुभूति से सुनता है, तो सब मित्र बन जाते हैं। अतः श्रोत्र वाक् द्वारा विश्व अर्थात् सब कर्म किये जाते हैं। वाणी द्वारा अपने अभिप्राय प्रकट कर दूसरों से कर्म कराए जाते हैं।

यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण का अभिप्राय यह है कि मन्त्रों में मन्त्रों के अवयव रूप में जब ये ऋषिनाम पठित हों तो इन नामों को देखकर यह न समझ लेना चाहिए कि ये मन्त्र या तो शीर्षक-ऋषियों के रचे हुए हैं, या ये मन्त्र इन ऋषि नामों से पश्चात् काल के हैं। मन्त्रों में मन्त्रों के अवयव रूप में और भी कई नाम आते हैं, जो कि शीर्षक-ऋषियों के समझ लिये जाते हैं, और इस प्रकार मन्त्रों में अनित्य इतिहासों की कल्पना कर ली जाती है। इन वसिष्ठ आदि नामों द्वारा, इन-इन नामों से प्रकट होने वाले गुणकर्मों से सम्पन्न अनैतिहासिक तत्त्वों, या कल्पित व्यक्तियों का ही वर्णन मंत्रों में समझना चाहिए, किन्हीं ऐतिहासिक व्यक्तियों का नहीं।

अन्य ऋषिनामः—

मन्त्रों में अन्य ऋषिनाम भी पठित हैं। यथा अंगिरा, अत्रि, कण्व, प्रियमेध, सप्त ऋषयः, गोतम, कश्यप, दध्यङ् आदि। अंगिरा—प्राण और अग्नि। अत्रि प्रलय में सब का अदन करने वाला परमेश्वर, कर्मफल भोग करने वाला जीवात्मा, तथा अन्न खाने वाली जिह्वा। कण्व—कण-कण में विद्या का उपार्जन करने वाला मेधावी पुरुष। प्रियमेध यज्ञ या मेधाशक्ति जिसे प्रिय लगे। सप्त ऋषयः—सात इन्द्रियां या ऐन्द्रियिक शक्तियां, अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियां, १ मन और बुद्धि। गोतम=वैदवाणी का विद्वान् या ज्ञान प्रकाश से प्रकाशित। कश्यपः=दिव्य दर्शन शक्ति से सम्पन्न, पश्यतीति कश्यपः। दध्यङ्—ध्यानशक्ति से सम्पन्न।

गंगा, यमुना, सरस्वतीः—

"इमं मे गंगे, यमुने सरस्वति" (ऋग्वेद १०।७५।५) में गंगा, यमुना और सरस्वती नाम पठित हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदाय के वैदिक विद्वान् इन्हें भारतीय नदियां

कहते हैं। अन्य वैदिक विद्वान् इन नामों द्वारा शरीरस्थ नाड़ियों का वर्णन हुआ कहते हैं। "शिवस्वरोदय" आदि हठयोग के ग्रन्थों में भी इन नामों द्वारा शरीरस्थ नाड़ियों का ग्रहण किया गया है। यथा :

इडा भगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी।
मध्ये सरस्वतीं विद्यात् प्रयागादिसमः तथा॥

अर्थात् इडा नाड़ी को गंगा कहते हैं, पिंगला नाड़ी को यमुना और इन दोनों के मध्य जो सुषुम्णा-दण्ड (nervous cord or spinal cord) है उसे सरस्वती कहते हैं। सुषुम्णा-दण्ड की दाईं ओर बाईं ओर तथा सुषुम्णा-दण्ड के समानान्तर में जो सूक्ष्म दो तन्तु तारें उपर से नीचे तक लगी हुई हैं, उनमें से जो दाईं ओर तन्तु तार है उसे पिंगला कहते हैं, और जो बाईं ओर की तार तन्तु है उसे इडा कहते हैं। इडा को चन्द्र तथा पिंगला को सूर्य भी कहते हैं। दोनों भ्रुवों के मध्य में तथा नासिका की जड़ के ऊपर जो रोमरहित स्थान है, वहां इन तीनों का मेल होता है। इस स्थान को ऊपर के श्लोक में 'प्रयाग' कहा है, क्योंकि यहीं पर चित्त को टिका का ध्यानरूपी सर्वोत्तम याग किया जाता है। प्रयागः सर्वोत्तमयागः।

पांच नदियां तथा सरस्वती :—

यजुर्वेद में एक मन्त्र है जिसके आधार पर भारतीय भूगर्भविद्या के पण्डित यह कहते हैं कि पचास हजार वर्ष पूर्व, कुरुक्षत्र के समीप बहने वाली सरस्वती नदी है पंजाब में पांच नदियां मिलती थीं, और सरस्वती नदी उसी देश में फिर ५ शाखाओं में विभक्त होकर पश्चिमी समुद्र में मिल जाती थी। इन ५ नदियों का स्रोत एक ही था, और वह हिमालय था। वह मन्त्र इस प्रकार है। यथा :

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित्॥ (यजुः ३४।११)।

अर्थात् समान उद्गमस्थान वाली ५ नदियां सरस्वती में मिलती हैं, और वह सरस्वती नदी (सरित्) देश में, फिर पांच शाखाओं में विभक्त हो गई है।

यदि भूगर्भशास्त्रियों के ऊपर के कथन को मान लिया जाये तो यह भी मानना पड़ेगा कि उपरिकथित यजुर्वेदमन्त्र भी पचास हजार वर्ष प्राचीन है। परन्तु यह परिणाम ऐतिहाहिक नहीं मानेंगे, क्योंकि यजुर्वेद को भी इतने प्राचीन काल का मानना पड़ेगा, जो कि उनके लिये अभिमत नहीं।

वस्तुतः इस मन्त्र में प्राचीन भूगोल-घटना का वर्णन नहीं। यह मन्त्र ५ ज्ञानेन्द्रियों और वाणी का वर्णन करता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियों का एक ही स्रोत है, वह है मस्तिष्क। मस्तिष्क से ज्ञानवाही तन्तु (sensory nerves) निकल कर, ज्ञानेन्द्रियों के नियत स्थानों में त्वचा और जिह्वा में आ लगते हैं। इन ज्ञानवाही तन्तुओं में, रूप रस, गन्ध-स्पर्श-शब्द आदि विषयों का ज्ञान-जल प्रवाहित होकर भीतर आता है, और सरस्वती (वाणी) में इनका मेल होता है। ज्ञान-जल प्रवाही ये ज्ञानवाही तन्तु ही पांच नदियां हैं जो कि मस्तिष्क रूपी एक स्रोत से निकल सरस्वती के साथ मिल रही हैं। सरस्वती उच्चारणक्रिया में फिर पांच शाखाओं में बंट जाती है, अर्थात रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द इनका वर्णन करती है। सरस्वती को मन्त्र में "सरित्" कहा है, क्योंकि यह आन्तरिक ज्ञान-जल को उच्चारण द्वारा, बाहिर की ओर प्रसारित (सरित्-सृ गतौ) करती है। "देशे" पद में दिशु—धातु है जिसका अर्थ 'उच्चारण' भी होता है, दिशिः उच्चारणक्रियाः (महाभाष्य)। इन पांच ज्ञानेन्द्रियों

को "पंस्रोतोऽम्बु" भी कहा हैं (श्वेता० उप०१।५), अर्थात् ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जिन में कि ज्ञान जल प्रवाहित होता है (अम्बुः—जल) इस प्रकार "पञ्च नद्यः" मन्त्र में भारत की पांच नदियां और सरस्वती नदी का वर्णन नहीं अपितु ज्ञान प्रवाही पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा वाणी का वर्णन है।

अयोध्या-पुरी :

अथर्ववेद में अयोध्या पुरी का वर्णन है। यह न समझ लिया जाये कि यह अयोध्या पुरी राम की पुरी है, जो कि सरयू नदी के किनारे वसी हुई है, इसलिए अथर्ववेद के मन्त्र द्वारा ही अयोध्यापुरी के स्वरूप पर प्रकाश डाला जाता है। यथा :

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ (१०।२।३१)
तस्मिन् हिरण्ययः कोशः व्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमान्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ (१०।२।३२)
प्रभाजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजितम्॥ (१०।२।३३)

अर्थात कुण्डलिनी, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर अनाहत या हृच्चक्र, विशुद्ध, विराट्, आज्ञा, सहस्रार। ये आठ चक्र सुषुम्णादण्ड तथा मस्तिष्क में हैं। पिछले दो चक्र मस्तिष्क में हैं, और शेष ६ चक्र सुषुम्णादण्ड में हैं। इन आठ चक्रों वाली पुरी यह शरीर है। इस पुरी में ९ द्वार हैं। २ आंखों के २ नासिका के, एक मुख, दो कान के, एक गुदा का, एक जननेन्द्रिय का। इस प्रकार शरीर में ९ द्वार हैं। इस शरीर-पुरी में जब देवों का निवास हो जाता है, असुरों का नहीं, तब इस पुरी पर आसुरभाव आक्रमण नहीं कर सकते। तब यह अयोध्यापुरी कहाती है, पुरी जिसके साथ आसुरभाव युद्ध नहीं कर सकते। इस पुरी में सुवर्णमय कोश है, रक्तरंजित हृदय है। इस का नाम स्वर्ग है। जीवात्मा, हृदय में ध्यान द्वारा, जब ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह मानो इस सुखमयी स्वर्ग भूमि में रहता है। यह हृदय स्वर्ग ब्रह्म की ज्योति से आवृत हैं। १०।२।३१॥

तीन अरों (Spokes) और तीन आधारों (Supports) वाले उस सुवर्णमय कोश (हृदय) में जो पूज्य शक्ति जीवात्मा के साथ बसी हुई है, ब्रह्मवेत्ता लोग उसे ब्रह्म कहते हैं और जानते हैं (१०।२।३२) चमकीली, मनोहारी, यश से घिरी हुई, अपराजित उस सुवर्णमय पुरी में ब्रह्म प्रवेश पाए हुए है।

अयोध्या पुरी के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि यह शरीर पुरी अयोध्या है। शरीर पुरी के वर्णन के आधार पर राम की राजधानी का नाम भी अयोध्या रख लिया प्रतीत होता है।

निरुक्त और इतिहास :

यास्काचार्यकृत निरुक्त वेदमन्त्रों की व्याख्या के सम्बन्ध में एक महत्त्वशाली प्रामाणिक ग्रन्थ है। मन्त्रों की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य ने, कई स्थलों में, ऐतिहासिक सम्प्रदाय का भी निर्देश किया है जोकि वेदों में अनित्य ऐतिहासिक घटनाओं की सत्ता मानते हैं। परन्तु यास्काचार्य ने, प्रतीत होने वाले उन ऐतिहासिक स्थलों में अपना नैरुक्त पक्ष दिखा कर ऐतिहासिक पक्ष के प्रति विरोध भाव व्यक्त किया है। निरुक्तकार यास्काचार्य बुद्ध-काल से पूर्व के हैं। अतः ज्ञात होता है कि वेदों में अनित्य ऐतिहासिक घटनाओं के मानने वाले केवल वर्तमान समय में ही समालोक नहीं; अपितु चिरकाल से यह ऐतिहासिक पक्ष भी चलता आ रहा है। वेदों में ऐति-

हासिक पक्ष का खण्डन पूर्वमीमांसा आदि ग्रन्थों में, जैमिनी आदि मुनियों और आचार्यों ने भी किया है। यास्काचार्य ने वेदों में प्रतीत होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं को प्राकृतिक और अध्यात्मिक घटनाओं के रूप में दर्शाया है। इस सम्बन्ध में कतिपय स्थल यहां उद्धृत किये जाते हैं। यथा: वेदों में वृत्र और इन्द्र के युद्धों का वर्णन मिलता है। निरुक्तकार लिखते हैं कि **"तत्को वृत्रः मेघ इति नैरुक्ता। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णाभवन्ति"**(२।५।२७)। अर्थात् वृत्र कौन है? ऐतिहासिक कहते हैं कि वृत्र असुर-जाति का और त्वष्टा का पुत्र है। परन्तु निरुक्त सम्प्रदाय कहता है कि वृत्र है **"मेघ"** मेघ अर्थात् आकाशीय जलों और ज्योति अर्थात मेघीय-विद्युत् (इन्द्र) जब आपस में मिश्रित होते हैं तब वर्षा होती है। वर्षा रूपी कर्म में मेघ की ताड़ना विद्युत् (इन्द्र) करती है। यही मानो युद्ध है। यह उपमारूप में युद्ध है, कोई ऐतिहासिक युद्ध नहीं। वर्षा का होना ही मानो इन्द्र (विद्युत्) द्वारा क्षत-विक्षत हुए वृत्र (मेघ) के शरीर से रक्त का बहना है।

इसी प्रकार **"अश्विनौ"** के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सम्प्रदाय कहता है कि **"पुण्यकृतौ राजानौ, इत्यैतिहासिकाः"**(निरुक्त १२।१।१)। अर्थात ये दो "अश्विनौ" पुण्यकर्मा दो राजा हुए हैं। परन्तु अन्यों के मत में अश्विनौ हैं—द्युलोक-पृथिवी लोक, दिन-रात, तथा सूर्य चन्द्रमा। परन्तु निरुक्तकार का मत है कि मध्य रात्रि के अन्धकार के साथ सूर्य के अलक्षित प्रकाश का मेल होने लगता है उस समय से लेकर जब तक अन्धकार और प्रकाश का मेल रहता है, यह अश्विनौ का काल है। ये अन्धकार और प्रकाश—दो अश्विनौ हैं। निरुक्त से और भी नाना स्थल उद्धृत किये जा सकते हैं जहां निरुक्तकार ने ऐतिहासिकों के पक्षों को दिखला कर, उनके खण्डन रूप में अनैतिहासिक मत को परिपुष्ट किया है।

नामों में समानता क्यों ?

प्रश्न हो सकता है कि इस का क्या कारण है कि कई शीर्षक ऋषिनामों और वेदमन्त्रोक्त, अर्थात् वेदमन्त्रों के अवयवरूप में दृष्टिगोचर होने वाले ऋषिनामों में समानता है, तथा इसी प्रकार लौकिक गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नामों और वेदोक्त, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नामों म समानता है। इस समानता का उत्तर मनु आदि स्मृतिकारों ने पहिले से ही दे दिया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित श्लोक बड़े महत्त्व के हैं। यथा :

नामरूपे च भूतानां कर्मणां च प्रवर्त्तनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे सः महेश्वरः॥
सर्वेषां तु सः नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

अर्थात वेदों से ही शब्द लेकर, सृष्ट्यारम्भ में, प्राणियों तथा भूत भौतिक पदार्थों के नामों और आकृति विशेषों, तथा उन के कर्मों का प्रवर्त्तन परमेश्वर ने किया है। सब के नामों, तथा वर्णाश्रम के पृथक्-पृथक् कर्मों और सभा, समिति, राज्य, राष्ट्र आदि संस्थाओं का निर्माण भी, सृष्टि के आरम्भ में वैदिक नामों तथा शब्दों के अनुसार ही हुआ है। यही कारण है कि लौकिक नामों, और वैदिक नामों में समता और सादृश्य है। अतः पश्चात् काल के ऋषिनामों तथा नदीनामों के सादृश्य के कारण वेदों में अनित्य इतिहास की कल्पना अयुक्त है। इस प्रकार संक्षेप से दर्शा दिया है कि वेदों में अनित्य इतिहास नहीं है।

—डा० भाई महावीर, संसद् सदस्य

इतिहास के पृष्ठ

'स्व' और राष्ट्रीयता

श्री जवाहरलाल नेहरू और भाई परमानन्द जी का ऐतिहासिक विवाद

अगस्त १९३५ में मेरे पिता भाई परमानन्द जी का उस समय की प्रमुख साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में एक लेख 'स्वराज्य क्या है' छपा था। उस लेख को श्री जवाहरलाल नेहरू ने अलमोड़ा जेल में पढ़ा और (उन्हीं के शब्दों में) बहुत आशा से पढ़ा कि इस कठिन सवाल के हल करने में या समझने में कुछ सहायता मिलेगी लेकिन पढ़ कर आश्चर्य हुआ। परिणामस्वरूप उन्होंने 'भाई परमानन्द और स्वराज्य' शीर्षक से अपने विचार, संदेह और प्रश्न लिपिबद्ध किये जो 'सरस्वती' के ही अक्तूबर अंक में प्रकाशित हुए। उसका उत्तर भाई जी के लेख 'जवाहरलाल नेहरू और हिन्दू संस्कृति' के रूप में दिसम्बर, १९३५ की 'सरस्वती' में छपा, इस प्रकार इस युग के दो प्रमुख विचारकों के मध्य, स्वराज्य—बल्कि उस में भी 'स्व'—के अर्थ पर छिड़ी बहस का पटाक्षेप हुआ।

अपने पहले लेख में भाईजी ने लिखा था—'स्व' का अर्थ अपना या 'सेल्फ' का है, तुरन्त ही प्रश्न उठता है कि 'अपना' में हम किसे शामिल करते हैं? हमारे कुछ भाई तो कह देंगे कि इस सवाल के हल करने में कठिनाई ही क्या है? 'अपना' में वे सब लोग शामिल हैं जो इस देश में रहते हैं, लेकिन मैं उत्तर इतना आसान नहीं समझता। मैं यह पूछूंगा कि यदि इंग्लैण्ड यहाँ हिन्दुस्तान में कोई ऐसा वाइसराय भेज दे जो यहाँ आ कर हमेशा के लिए आबाद हो जाय और वह अपने राज्य की रक्षा के लिए कभी-कभी इंग्लैण्ड से अपने आदमियों को बुलाता रहे तो क्या वह राज्य हमारे लिए स्वराज्य होगा या नहीं? कोई साहब कह देंगे यह तो बिल्कुल फर्जी बात है। मैं बताना चाहता हूँ कि यह बात फर्जी नहीं है। इस देश में मुगलों का राज था, मुगलों

से पहले दूसरे कई वंशों की हकूमत थी, वे शासक और उनके सैनिक जिन्हें वे साथ लाये थे, इस देश के निवासी बन गये थे, क्या उस जमाने के हिन्दुओं ने उस राज्य को अपना समझा या दूसरों का ? अगर उन्होंने दूसरों का समझा तो क्या वे गलती पर थे और और जिस वर्ग ने उन्हें अपना समझा, वे ठीक थे ? इस बात को स्पष्ट करने के लिए हमें समझ लेना चाहिए कि स्वराज्य लेने के दो भिन्न मार्ग हैं।

एक तो यह कि हम राज्य के रूप को बदलें और दूसरा यह कि हम अपने रूप को बदल लें। जब मुसलमानों ने इस देश पर आक्रमण किये और जगह-जगह राज्य स्थापित करने का यत्न किया, उस समय हिन्दुस्तान की हिन्दू आबादी में दो प्रकार के आदमी पाये जाते थे, एक वे जिन्होंने यह समझा कि स्वराज्य लेना बड़ी मामूली बात है। उन्होंने अपना धर्म छोड़ दिया, अपने बुजुर्गों को छोड़ दिया, अपनी जातीयता को छोड़ दिया और इस्लामी मजहब अंगीकार कर लिया। मुसलमान होते ही तुरन्त उनका 'स्व' बदल गया। वे इस्लामी राज को अपना राज समझने लगे, उनके स्वराज्य लेने का तरीका बड़ा आसान था। केवल 'सेल्फ' को बदल देने से बिना किसी बलिदान के, बिना किसी चरित्र के, बिना किसी मेहनत के उन्होंने स्वराज्य प्राप्त कर लिया। उस वक्त जितने लोग अपना धर्म और राष्ट्रीयता छोड़कर मुसलमान बन गये वे महमूद गजनवी और तैमूर को अपना भाई समझने लगे और उन्हें नादिरशाह व अहमदशाह अब्दाली के हिन्दुओं पर किये अत्याचार बहुत प्रसन्नता देने लगे, और गर्व-पूर्ण रंग में दिखायी देने लगे। और आज उन लोगों की संतान रूप जितने मुसलमान, भारत में आबाद हैं, उन सब के लिए इस्लामी हकूमत 'स्वराज्य' हो गयी। भारत के इतिहास के प्रति उनका दृष्टिकोण ही बदल गया।

एक दूसरा ढंग भी था स्वराज्य प्राप्त करने का, जिससे दूसरे लोगों ने यत्न किया। उसके उदाहरण हमें राजपूत इतिहास में, महाराज शिवाजी और मराठों के उदय में मिलते हैं। उसकी अगली मिसाल हमें गुरु गोविन्दसिंह, वीर वैरागी और सिक्ख साम्राज्य में मिलती है। राजपूतों, मराठों और सिक्खों ने भी 'स्वराज्य' प्राप्त किया। उनका ढंग पहले के बिल्कुल उलट था, उन्होंने बड़ी भारी कुर्बानियां कीं, बड़े-बड़े दुख उठाये और अपने निकट सम्बन्धियों और स्त्रियों तक को कत्ल करवा दिया। उन्होंने अपनी गिरी हुई जाति में चरित्र उत्पन्न किया, उसके अन्दर नयी जिन्दगी डाली। यह उस नयी जिन्दगी के ही कारण था कि महाराष्ट्र के सामान्य देहातियों और पंजाब के गांवों में रहने वालों ने अपने राज्य स्थापित कर लिये।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि पहली किस्म के लोग मिस्र और ईरान के निवासियों जैसे थे जिन्होंने अपनी जातीयता का नामोनिशान मिटा दिया और अपने आपको एक गैर जाति के अन्दर जज्ब कर दिया। वंश और रक्त का जो सिल-सिला हजारों साल से उनकी रगों में चला आता था, उसे उन्होंने मिटा दिया और अपनी कायरता या गिरावट के कारण कुछ से कुछ बन गये। यह सिलसिला जाती-यता है यही राष्ट्र का जीवन और उसकी आत्मा है। जो लोग इस सिलसिले को मिटा कर दूसरे तरीके से स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनका स्वराज्य घृणा के योग्य है। उनके स्वराज्य से मृत्यु हजार गुणा अच्छी है।

नेहरू द्वारा आलोचना

स्वराज्य की इस परिभाषा की नेहरू जी ने आलोचना की। साथ में उन्होंने कुछ अपनी कल्पना दी—

"अगर राजनैतिक और आर्थिक बातों में कोई देश अन्य देशों के अधीन नहीं है, तब वह आजाद या स्वतन्त्र कहलाता है.....अगर यह आजादी उसकी है, तब कोई सवाल सांस्कृतिक या सामाजिक आजादी का नहीं उठता। क्योंकि वह तो उसमें मिली हुई है....."

और उसके बाद उन्होंने दो प्रश्न किये जो इस प्रकार थे—

"यह स्व क्या है और भाई जी की राय में हिन्दुत्व क्या है.....हिन्दुओं में जात-पात-तोड़क मण्डल के सदस्य हैं और भाई जी हिन्दुत्व में रखेंगे ? जहां तक मैं जानता हूँ वे इसके विरुद्ध हैं और जात-पात-तोड़क मण्डल के सदस्य हैं और हमारे बहुत से रिवाज हैं—विधवाओं संबन्धी, विरासत के बारे में, विवाह के, मरने के, पूजा इत्यादि के, खाने के, छूत-छात के, कपड़ों के। इसमें से क्या-क्या बातें हिन्दुत्व में रखनी चाहिए ? यह कहा जा सकता है कि ज्यादातर ये बातें ऊपरी हैं और मूल बातें पकड़ने के लिए हमें वेदों को लेना चाहिए या हमारे दर्शन शास्त्र को। बहुतसे हिन्दू यह नहीं मानेंगे कि हम इन ऊपरी बातों को अहमियत न दें। वे उन्हें वेदों से अधिक आवश्यक मानते हैं। और अगर हिन्दुओं के आगे बढ़िए और बौद्ध, सिक्ख, जैनों को लीजिए, तब और भी पेचीदगियां बढ़ती हैं। बौद्ध दर्शन शास्त्रों में और हिन्दू दर्शन शास्त्रों में बहुत फर्क है। वे तो ईश्वर तक को नहीं मानते.....इस-लिए यह आवश्यक है कि भाई परमानन्द जी और हिन्दू महासभा इस बात को साफ कर दें कि किस हिन्दुत्व को वे हमारे देश में रखना चाहते हैं।

दूसरा प्रश्न, एक दृष्टि से, अधिक महत्त्व का है, नेहरू जी ने लिखा है:—

"भाई जी मिस्र और ईरान की मिसाल देते हैं कि उन्होंने अपनी जातीयता को मिटा दिया और अपने को एक विदेशी जाति के अन्दर जज्ब करवा दिया। मिस्र का हजारों वर्ष का पुराना इतिहास चला आता था और उसमें बहुत ऊंच-नीच और तबादले और हमले और फतह हुए थे—फिर करीब २२०० वर्ष हुए सिकन्दर ने मिस्र फतह किया और उसकी मृत्यु के बाद उसका एक जनरल टोलोमी वहाँ का बादशाह हुआ। उसने मिस्र के देवता और आचार-विचार स्वीकार किये, केवल उनमें कुछ अपने ग्रीस के भी मिला दिये। मिस्र एक बड़ा केन्द्र ग्रीक सभ्यता और संस्कृति का हो गया। फिर बहुत दिन बाद वह रोमन साम्राज्य के अधीन हो गया। ईसाई मजहब वहां शुरू ही में योरुप के पहले फैला और कई सौ वर्ष तक रहा। बाद में इसलाम आया और उसकी आसानी से जीत हुई। इस समय मिस्र में अधिकतर मुसलमान हैं और कुछ पुराने इसलाम के ईसाई हैं जो कोप्ट्स कहलाते हैं। इसलाम भी वहां १३०० वर्ष से है। जब भाई जी कहते हैं कि मिस्र ने अपनी जातीयता को मिटा दिया तब उनका क्या मतलब है ? पिछले ७००० वर्ष के इतिहास में किस जमाने को वे मिस्र की असली जातीयता का जमाना गिनते हैं ?

'ईरान में इसलाम की जीत मिस्र की तरह जल्दी हुई लेकिन जानने वालों की राय यह है कि उसमें ईरानी सभ्यता और संस्कृति दबी नहीं बल्कि अरबी मुसल-मानों तक पर हावी आ गई और अरबी खलीफा पुराने ईरानी बादशाहों की और बहुतेरे रिवाजों की नकल करने लगे। यह ईरानी संस्कृति इतनी जोरदार थी कि उसका असर पश्चिमी एशिया से लेकर चीन तक लगातार कायम रहा। इस समय ईरान में इस्लाम के पहले की यह पुरानी संस्कृति लोगों को जोरों से आकर्षित कर रही है।

हमारे देश के पुराने इतिहास की एक झलक देखिये। आर्यों के आने से पूर्व कई सहस्र वर्ष तक यहां एक ऊंचे दर्जे की सभ्यता थी, जिसका एक छोटा-सा नमूना हमें मोहनजोदड़ो से मिलता है। शायद उसका संबंध द्रविड़ सभ्यता से हो जो स्वयं आर्यों से पहले की थी। फिर आर्य आये और द्रविड़ लोगों को हराया और उन पर हकूमत की। कुछ रिवाज और धर्म के मामले में उनसे समझौता किया, कुछ अपने देवता उनके सामने रक्खे। इन समझौतों से एक मिली हुई संस्कृति पैदा हुई जिसमें आर्यों का अधिक हिस्सा था। फिर और बहुत-सी जातियाँ इस देश में हमला करके आई जिनमें खास तौर से कई जातियां थीं, और यहां बस गयीं। राजपूताने और काठियावाड़ के हमारे बहुतेरे राजपूत खानदान तुर्की खून रखते हैं। उस जमाने में दूसरे धर्म का कोई सवाल नहीं था, क्योंकि मध्य एशिया के ये तुर्की लोग सब बौद्ध थे। फिर भी वे अपने बहुतेरे रिवाज और आचार यहाँ ले आए। इसी तरह से भारत में (और हर देश ही में) बहुत चश्मे और दरिया मुख्तलिफ देशों से बह कर आये और हमारी संस्कृति पर असर डालते गये। फिर इसलाम फातेह की सूरत में आया और हम अपने को बचाने के लिए सिकुड़ गए और अपनी संस्कृति की खिड़कियाँ जो खुली रहती थीं, उन्हें बन्द कर दिया।

'भाई जी की राय में हमारी हिन्दू जातीयता कब से शुरू होती है? आर्यों के आने पर? यह क्यों? हम उनके पहले मोहनजोदाड़ो के जमाने को क्यों छोड़ दें और फिर द्रविड़ के जमाने को? क्या द्रविड़ लोगों को कहने का अधिकार नहीं है कि आर्य लोग बाहरी हैं जो आकर यहाँ बलपूर्वक जम गये हैं? ऐसे बहुतसे सवाल उठ सकते हैं, क्योंकि इतिहास में सभ्यता, संस्कृति, विचारधाराएँ सब बहती हुई एक देश से दूसरे देश में जाती रहती हैं और एक दूसरे पर असर डालती रहती हैं। उनके बीच में अलग करने को कतार खींच देनी कठिन है। किसी भी जीवित चीज की यह निशानी है कि वह बढ़ती और बदलती है। जहाँ उसका बढ़ना रुका वहाँ उसकी जान निकल गई। सभ्यता और संस्कृति भी इसी तरह उसी समय तक जिंदा रहती हैं जब तक उनमें माद्दा है, बदलने का। सबसे बड़ा सबक जो इतिहास हमें सिखाता है, वह यह है कि कोई भीं चीज एकसी नहीं रहती। हर समय बढ़ना या घटना, क्रांति या इन्कलाब। जिस जाति ने इससे बचने की कोशिश की और अपने को जकड़ लिया वह अपने ही बनाये हुए पिंजरे में कैदी बनकर सूखने लगी।

सारी शंकाओं के अन्त में नेहरू जी ने माना कि 'पुराने इतिहास और आधुनिक संसार की राजनीति पर विचार करते हुए दिमाग में खयालात का हुजूम पैदा हो जाता है; और यह आग्रह दोहराया कि 'भाई परमानन्द अपने मानों पर ज्यादा रोशनी डालें और जिन बातों की तरफ मैंने इस लेख में इशारा किया है उन्हे साफ करें।'

भाई जी का उत्तर

परिणामतः भाई जी ने उठाए गए प्रश्नों को अधिक स्पष्ट करने के लिए दूसरा लेख लिखा, उसमें उन्होंने कहा 'पं० जवाहरलाल का दूसरा प्रश्न यह है-स्वराज्यमें स्व.(सेल्फ) क्या है? (और अगर उसका संबंध 'हिन्दू' शब्द से है तो) भाई जी की राय में हिन्दुत्व क्या है?"

'वास्तव में यह एक मौलिक प्रश्न है; उन्होंने लिखा, 'जान स्टुअर्ट मिल तथा अन्य विद्वानों ने जातीयता की परिभाषा करते हुए बतलाया है कि यह कई बातों

के मिलने से बनती है, उदाहरणार्थ खून या नस्ल का एक होना, देश का एक होना, भाषा का एक होना, मजहब और गवर्नमैंट का एक होना, और इन सब से बढ़ कर संस्कृति का एक होना। (संस्कृति में इतिहास, परम्पराएं, त्यौहार, दर्शन, कला आदि सम्मिलित हैं) परन्तु इसके साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि हर जातीयता के बनने के लिए इन सभी तत्त्वों का होना जरूरी नहीं। इनमें से कोई दो-तीन भी ऐसे मजबूत हो सकते हैं कि वे अन्य भेद भावों की विद्यमानता में भी जाति बना दें। जातीयता के वास्तविक भाव (स्पिरिट) को समझना बहुत आसान हो जाता है अगर हम एक मनुष्य के जीवन को अपने सम्मुख रख लें। छः-सात वर्ष का बच्चा है, उसका रंग रूप और बौद्धिकी अवस्था बच्चों कीसी है। वही बच्चा बड़ा होकर लड़का बनता है और फिर जवान होता है। बाद में बूढ़ा हो जाने पर उसके शरीर में अगणित परिवर्तन आ जाते हैं। परन्तु एक बूढ़ा आदमी भी अपने छुटपन की हालत को याद करके इस बात का ज्ञान रखता है कि उसका जीवन बचपन से लेकर बुढ़ापे तक बराबर, सिलसिलेवार एक ही चला आ रहा है। जीवन का इस प्रकार जारी रहना या जीवन अनुवर्तन ही वास्तविक जातीयता है।

'हिंदुओं के वर्णों या जातियों को, उनके सामाजिक संस्कारों और रस्मों को उनके विभिन्न मत मतान्तरों को मैं हिन्दुओं की जातीयता नहीं समझता बल्कि जातीयता का एक प्रकार का लिबास खयाल करता हूं, जिसे बनाए रखना या बदल देना जाति के अपने अख्तियार की बात है। और, इसमें परिवर्तन कर देने से जाति मिट नहीं जाती बल्कि इसे एक प्रकार से उन्नति का साधन समझा जाता है।

मिस्र, ईरान आदि के उदाहरण देकर मैंने बताया था कि ज्यों ही इन देशों ने इस्लाम स्वीकार किया, त्यों ही इनकी अपनी-अपनी असली राष्ट्रीयता मिट गई और अरबी सभ्यता में जज्ब हो जाने से ये एक प्रकार से स्थायी दासत्व का शिकार हो गये। इस पर पंडित जी का सवाल है कि मेरे पहले लेख में किस युग के मिस्रियों को असली जाति कहा गया है।

'इसका उत्तर यह है कि जब तक मिस्रवासियों न अपने अन्दर जातीय अनुवर्तन या सिलसिले को कायम रखा और जब तक उनके अन्दर यह भाव विद्यमान रहा कि वे उसी जाति में से उत्पन्न हुए हैं जिसने पिरामिडों को बनाया और यूरोप में अपनी सभ्यता फैलाई, तब तक वे चाहे स्वाधीन रहे चाहे रोमन लोगों के अधीन रहे या यूनानियों के, उनकी जातीयता बराबर बनी रही। परन्तु जब अरबवासियों ने मिस्र को विजित करके मिस्रवासियों को उनके समस्त भूत अतीत से अलग कर दिया तब उस समय मिस्री जाति मिट गयी और तब मिस्र में उस बड़े शानदार मिस्री वृक्ष के स्थान में अरब की एक शाखा गाड़ दी गयी।

यह बात ब्रिटेन के इतिहास से भी भली-भाँति प्रकट हो जाती है। ब्रिटेनवासी,जो केल्ट कहलाते थे, तीन सौ वर्ष तक रोमन साम्राज्य के अधीन रहे। रोमन दासत्व के होते हुए उनका मजहब, संस्कृति और जातीयता बने रहे। (उनके मजहब और रीति-रिवाज पुराने आर्यों जैसे और वर्तमान हिन्दुओं से मिलते जुलते थे।) जब एंग्लोसेक्सन लोगों ने ब्रिटेन पर आक्रमण करने शुरू किये तब उन्होंने अपनी जीतों के साथ ब्रिटेनवासियों को मिटा दिया और उस जाति में एंग्लोसेक्सन नसल न सिर्फ शासक बन गई बल्कि वहाँ की जाति कहलाने लगी।

इसी प्रकार जो कुछ मिस्र में हुआ ठीक वही ईरान में हुआ। जब अरबी फौजों ने ईरान को विजित किया और सभी ईरानियों को मुसलमान बनाना चाहा,

तब उन ईरानियों के सामने जो अपनी जाति से प्रेम करते थे, यह सवाल पैदा हुआ कि आया वे जाति को तिलांजलि दे दें या देश को ? कुछ हजार ईरानियों ने अपनी जाति और मजहब को बचाना श्रेयस्कर समझा और किश्तियों में बैठ कर अनहलवाड़ा (गुजरात) आ पहुंचे। (इनकी संतान आज कल के भारतीय पारसीहैं।)

'स्वतन्त्र होते हुए या परतन्त्र होते हुए जब तक हिन्दू स्त्री, पुरुष और बच्चे के अन्दर यह भाव मौजूद है कि उनका सम्बन्ध राम और सीता से है और वे अपने पूर्वजों की आत्माओं को अपनी आत्मा के अन्दर देखते हैं, तब तक वे हिंदू जातीयता या राष्ट्रीयता को कायम रखते हैं। ज्यों ही कुछ हिंदू अपने सभी पूर्वजों से संबंध विच्छेद करके अपने मजहब, अपने इतिहास और अपनी संस्कृति आदि का नाता अरब से जोड़ लेते हैं, त्यों ही उनके अन्दर से हिंदुत्व मिट जाता है और उसके स्थान में गैरियत आ जाती है। यह बात एक छोटेसे उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। जिन-जिन लोगों के दिल में हिंदुत्व (स्व) विद्यमान है वे महाराज युधिष्ठर, राजा विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह को अपने राष्ट्रीय वीर और मुक्तिदाता मानते हैं। इसके विपरीत जिन लोगों के दिल से हिंदुत्व उड़ गया है। वे भारत पर आक्रमण करने वाले महमूद गजनवी, मुहम्मद गौरी, तैमूर, बाबर आदि शत्रुओं को स्मरणीय पूर्वज और कौमी 'हीरो' समझते हैं।

नेहरूजी ने सांस्कृतिक और सामाजिक आजादी को राजनैतिक (और आर्थिक) आजादी में निहित माना था। इस विषय में भाई जी ने लिखा :

'भारत सदियों तक मुसलमान बादशाहों का गुलाम रहा। गुलाम होने से इसकी राजनैतिक स्वतन्त्रता चली गई। परन्तु बाहरी दबाव होते हुए इसकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता बनी रही। सांस्कृतिक स्वतन्त्रता थी जिसने हिन्दुओं को मुसलमान शासकों से अलग रखा और इस कारण ही हिंदुओं ने इस्लामी गवर्नमैंट के मुकाबले पर विरोध का झंडा खड़ा करने वाले उत्पन्न हुए। यदि राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ हिन्दुओं की संस्कृति और सामाजिक जीवन खत्म हो गये होते जैसा कि मिस्र, ईरान और अफगानिस्तान में हुआ तो हिन्दुओं में ऐसे देशभक्त और राष्ट्रीय वीर न उत्पन्न होते। राजनीतिक दासत्व एक प्रकार सेजाति का शारीरिक दासत्व होता है, परन्तु सांस्कृतिक दासत्व उसके मानसिक दासत्व के समान है। पहले शारीरिक गुलामी आती है। इसके बाद विजेता जाति का लाभ इसमें होता है कि विजित जाति के अन्दर अपनी संस्कृति अर्थात् स्वभाषा, स्वसाहित्य और स्वगौरव के प्रचार कर के (जैसा कि ब्रिटिश गवर्नमैंट ने अपनी शिक्षा पद्धति के द्वारा भारत में किया है) उसके अन्दर ऐसी दिमागी गुलामी पैदा कर दें कि विजित अपने आपको विजेता का ही एक अंश समझने लग जाये और इस प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने पर उसके अन्दर स्वतंत्रता की इच्छा ही मिट जाये।'

अंग्रेज गये किन्तु अंग्रेजों के 'स्व' में हम अपने आप को जज्ब होने से बचा सके या नहीं इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं। देश में अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व सदा सर्वदा के लिए बना रहे, इस मांग की उपेक्षा कर दी जाए तो भी नई दिल्ली की सड़कों पर चलते हुए सुपठित भद्रजनों की चालढाल, विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले युवक-युवतियों का अंग्रेजी में ही हंसना और अंग्रेजी में ही लड़ना-झगड़ना रईसी घरानों में कुत्तों के साथ भी अंग्रेजी में होने वाले वार्तालाप और बच्चों के जन्मोत्सव पर केकों पर जलती मोमबत्तियों के, अंग्रेजी सड़कों, दुकानों व दफ्तरों के अंग्रेजी नाम व अंग्रेजी में नामपट्ट देखकर किसी अजनबी को यह भ्रम हो जाएकि वह भारत के बजाय इंग्लैंड के किसी नगर में है तो क्या अचम्भा होगा ?

—धर्मपाल बी. ए., प्रभाकर

पाखंड खंडन

धार्मिक जन.....सावधान !

श्री रजनीश के वाक्छल से भरे, अधार्मिक एवं अनैतिक विचारों का दिग्दर्शन

यह योगी हैं या पाप के प्रचारक

यह लेख किसी दुर्भावना से अथवा किसी के मन को आघात पहुँचाने के उद्देश्य से नहीं लिखा गया, अपितु पूर्ण सद्भावना और जन-हित की कामना से लिखा गया है। मानव का धर्म है कि वह सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग के लिये सदा उद्यत रहे और इसी सत्य प्रचार की भावना से प्रेरित हो कर इन पंक्तियों में निन्दित वाममार्ग का फिर से प्रचार करने वाले एक नये सम्प्रदाय की अधार्मिक एवं अनैतिक मान्यताओं को उन के अपने ही शब्दों में जनता के सम्मुख रखने का प्रयास किया गया है।

संसार के कुछ चतुर लोग वाक्छल का या शब्दजाल से भरी रोचक शैली का अवलम्बन लेकर जनता में भ्रमपूर्ण असत्य विचारों का प्रचार करके अपनी स्वार्थ सिद्धि किया करते हैं "स्वार्थी दोषं न पश्यति"—ऐसा पहिले भी होता आया है और अब भी हो रहा है। श्री रजनीश की भी यही स्थिति है। श्री रजनीश का व्यक्तित्व आकर्षक है और भाषण शैली प्रभावोत्पादक है। इन गुणों का उपयोग यदि वह सत्य सनातन वैदिक धर्म के उदात्त विचारों के प्रकाशन और सत्यशास्त्रों के प्रणेता पूज्य ऋषि मुनियों तथा महापुरुषों के सद्वचनों और अनुभवों के प्रचारार्थ करते तो सचमुच जगत् का हित होता और सर्व साधारण जनता का कल्याण होता-पर उन का कर्त्तव्य और आचरण इस से विपरीत है। अपने प्रवचनों और प्रकाशनों में उन्होंने ऐसे अधार्मिक विचारों और असंगत संस्कारों का प्रचार किया है जिस से देश और धर्म को महान् हानि होने की सम्भावना है।

वाममार्गी विचारों का प्रचार

दुर्भाग्य से कभी वाममार्ग ने अपने देश में बल पकड़ा था और इस की अश्लील और अनैतिक विचार धारा ने राष्ट्र को महान् हानि पहुंचाई थी, आचार्य रजनीश के विचार इसी वाममार्ग का नया संस्करण हैं। वाममार्ग और श्री रजनीश के विचारों में कितनी साम्यता है इस को समझने के लिये पहले वाममार्ग की मान्यताओं का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। वाममार्गी मद्य और मैथुन के बड़े प्रचारक थे और उन्होंने अपनी पुस्तकों में लिखा था—

"मद्यं मासं च मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पंचमकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे॥"

अर्थात् "पांच मकार मद्य, मांस, मछली, मुद्रा, मैथुन हर युग में मोक्ष देने वाले हैं।" मोक्ष का कितना सस्ता नुसखा इन लोगों ने पेश किया। मैथुन और मद्यपान् के महात्म्य के सम्बन्ध में वाममार्गियों ने प्रचार किया:—

१—"मैथुनेन महायोगी"।

२—"अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन"

अर्थात्-मैथुन करने से मनुष्य महायोगी होता है और शराब पीने से आठों ऐश्वर्य और परम मोक्ष मिलता है। अब इन विचारों के साथ श्री रजनीश के विचारों की साम्यता भी देखिये। वाममार्गियों ने कहा था "मैथुन महायोगी" और रजनीश जी ने कहा कि "सम्भोग से समाधि"। नयापन लाने के लिये मैथुन के स्थान पर सम्भोग शब्द रखा और योग के स्थान पर समाधि—पर भाव दोनों का एक ही है। रजनीश जी के शिष्य गुरु से भी आगे बढ़े और उन्होंने अन्त्यानुप्रास का आनन्द लेने के लिये "सम्भोग से समाधि" की जगह "काम से राम" ऐसा शब्दान्तर कर दिया अर्थात् राम (परमात्मा) तक पहुंचने के लिये काम ही एक सीढ़ी है देखिये—("ज्योतिशिखा" के १४ वें अंक के टाईटल पृष्ठ पर विज्ञापन)

श्री रजनीश जी ने एक पुस्तक लिखी है जिस का नाम है "संभोग से समाधि की ओर" इस पुस्तक के टाईटल के पहले और अन्तिम दोनों पृष्ठों पर सम्भोग (मैथुन) के ऐसे अश्लील नग्न और उत्तेजक चित्र प्रकाशित किए हैं कि कोई भी सभ्य आदमी लज्जित हुए बिना न रहेगा। कहा जाता है कि यह खजुराहो के मन्दिर पर अंकित चित्रों की प्रतिलिपि है—परन्तु एक व्यक्ति जो दावा तो यह करता है कि वह सच्चे धर्म्म और समाधि का प्रतिपादन करता है, उस की पुस्तक का प्रारम्भ इस प्रकार के गन्दे और नग्न चित्रों से क्यों हो? इन चित्रों से समाधि की नहीं काम व्याधि की ही प्रवृत्ति बढ़ेगी।

इस पुस्तक में रजनीश जी ने सम्भोग (मैथुन) की बड़ी महिमा गाई है और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है कि पाठकों में सम्भोग की लालसा बढ़ जाना स्वाभाविक है। इन के विचारों का संक्षिप्त विवरण इन के ही शब्दों में नीचे पढ़िये:—

(क) "पहली बात, आज तक मनुष्य की सारी संस्कृतियों ने सैक्स का, काम का, वासना का विरोध किया है। इस विरोध ने, इस निषेध ने मनुष्य के भीतर प्रेम के जन्म की सम्भावना नष्ट कर दी। क्योंकि सच्चाई यह है कि प्रेम की सारी यात्रा का प्राथमिक बिन्दु काम है, सैक्स है। प्रेम की यात्रा का जन्म, गंगोत्री—जहां से गंगा पैदा होगी—प्रेम ही वह सैक्स है, वह काम है और उस के सब दुश्मन हैं। सारी

संस्कृतियां, सारे धर्म, सारे गुरु और सारे महात्माओं ने तो गंगोत्री पर ही चोट कर दी।" "सम्भोग से समाधि की ओर"—पृष्ठ १०

(ख) 'मेरी अपनी दृष्टि यह है कि मनुष्य को समाधि का, ध्यान का जो पहला अनुभव मिला है मनुष्य के इतिहास में, तो वह संभोग के क्षण में मिला है और कभी नहीं।" "सम्भोग से समाधि की ओर"—पृष्ठ २२

(ग) "कुछ थोड़े से सूत्र आप को कहता हूं·····सम्भोग करते क्षणों में श्वांस जितनी तेज होगी सम्भोग का काल उतना ही छोटा होगा। श्वांस जितनी शान्त और शिथिल होगी संभोग का काल उतना ही लम्बा हो जाएगा। अगर श्वांस को बिल्कुल शिथिल रहने का थोड़ा-सा अभ्यास किया जाय, तो संभोग के क्षणों को कितना ही लम्बा किया जा सकता है। और सम्भोग के क्षण जितने लम्बे होंगे उतना ही सम्भोग समाधि का द्वार बन सकेगा"। "सम्भोग से समाधि की ओर" पृष्ठ ११०

(घ) "लेकिन सम्भोग में जितना आनन्द है और समाधि में जो आनन्द है उसे फिर भी नहीं तोला जा सकता।" "संभोग से समाधि की ओर"—पृष्ठ ११६

रजनीश जी के इन शब्दों में आध्यात्मिकता की गंध आती है या मैथुन की उत्तेजना मिलती है इस का निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं ही करें।

२. मद्यपान (शराब पीना) प्रचार

वाममार्गियों ने मद्यपान का बहुत प्रचार किया और अपनी पुस्तकों में लिखा है कि—

"पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न जायते॥"

अर्थात् शराब पीकर जो बार-बार पिये और यदि भूमि पर गिर जाये तो उठ कर फिर दोबारा पिये तो इससे पुनर्जन्म नहीं होता आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। ऐसे ही विचार प्रायः रजनीश जी भी अपने भाषणों में प्रकट करते रहे। (सन् १९७०) के अगस्त महीने में श्री रजनीश ने लुधियाना में दिये अपने एक भाषण में कहा:—

"भारत में सब गौओं को कतल कर देना चाहिये और हर शख्स को शराब पीनी चाहिये" (देखो उर्दू प्रदीप ता. २४. ८. ७०)

इन शब्दों का जनता ने घोर विरोध किया जिस पर पुलिस द्वारा श्रोताओं पर लाठी चार्ज करवाया गया।

३. संयम ब्रह्मचर्य की निन्दा

सभी धर्मोंके आचार्यों, गुरुओं और महापुरुषों ने संयम (जितेन्द्रियता) पर बहुत बल दिया है और इसे धर्म का एक महान् अंग माना है। महात्मा गान्धी जी ने एक बार लिखा था कि "संयम हीन स्त्री या पुरुष को गया बीता समझिये" एक अन्य महापुरुष ने कहा था कि "संयम मनुष्य को देव तुल्य बना देता है।" महाभारत में लिखाहै:—

"आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्थाः"

अर्थात्—संयम में ही समस्त तीर्थों के पुण्य का फल है। पर रजनीश जी अपने भाषणों और लेखों में स्थान २ पर संयम की निन्दा करते हैं। उदाहरण के

लिये अधिक नहीं केवल दो उदाहरण ही यहां दिये जाते हैं। रजनीश जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं:—

(क) "संयमी आदमी बड़े खतरनाक होते हैं—क्यों कि उन के भीतर ज्वालामुखी उबल रहा होता है।" "संभोग से समाधि की ओर" पृष्ट १८

(ख) "संयम की सारी शिक्षा मनुष्य को पागल विक्षिप्त और रुग्ण करेगी।
"संभोग से समाधि की ओर" पृष्ठ ४६

४. शास्त्रों और धर्मग्रन्थों का अपमान

सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि शास्त्रकार ऋषि मुनि बहुत उच्च कोटि के साधक और महात्मा थे और उन्होंने अपनी तपस्या और सतत साधना से जो तत्व-ज्ञान प्राप्त किया उसे उन्होंने सभी के कल्याणार्थ जिन ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया, इन्हीं का नाम शास्त्र है। एक महान् संत का वचन है "शास्त्रका काम अंगुली की तरह ब्रह्म=चन्द्र को दिखाना है। परमहंस श्री रामकृष्ण जी ने एक स्थान पर लिखा है। "शास्त्र का काम ईश्वर का केवल रास्ता बताना है" नीतिकारों ने शास्त्र प्रशंसा में लिखा है:—

"काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्"

मगर इस के विपरीत श्री रजनीश ने इन्हीं महान् ग्रन्थों, शास्त्रों की घोर निन्दा की है। उन के ग्रन्थ इस निन्दा से भरे पड़े हैं, यहां दो तीन उदाहरण देने ही पर्याप्त होंगे:—

(क) "जिन्हें जानना है उन्हें शास्त्र को छोड़ देना होता है। जो शास्त्र को पकड़ेंगे—सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं होगा।"
"सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण" पृष्ठ ५

(ख) "शास्त्रों में सत्य नहीं, सत्य तो स्वयं में है।" "साधना पथ" पृष्ठ ६६

(ग) "उचित है कि हम विश्वासों के मिथ्याजाल को तोड़ दें और शास्त्रों और सिद्धान्तों की धूलि को भी स्वयं के चित्त दर्पण से झाड़ दें।"
"सत्यके अज्ञात सागर का आमंत्रण" पृष्ठ २१

धर्म-प्राण, सनातन, जैन, सिख और आर्य्य जनता स्वयं ही विचारें कि क्या वह अपने शास्त्रों और धर्मग्रन्थों का इस प्रकार का अपमान सहन करेंगे? वास्तविकता यह है कि रजनीश जी का अपना शास्त्र-ज्ञान शून्य के बराबर है और अज्ञान पर परदा डालने के लिये वह शास्त्रों और धर्मग्रन्थों का ही विरोध करते हैं।

५. वेश्याओं की प्रशंसा और साधु संन्यासियों का उपहास

श्री रजनीश ने साधु संन्यासियों पर कैसा कुत्सित लांछन लगाया है यह जरा उन के ही शब्दों में पढ़िये:—

"मैं जब वेश्याओं से मिला हूँ, तब वेश्याओं ने मुझ से Sex की बात नहीं की। उन्होंने आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में पूछताछ की और मैं साधु संन्यासियों से भी मिलता हूँ। वे जब भी अकेले में मिलते है तो सिवाय Sex के और किसी बात के सम्बन्ध में पूछताछ नहीं करते।" "सम्भोग से समाधि की ओर" पृष्ठ ५४

धन्य हैं रजनीश जी ! बेहतर होगा आप अपना प्रचार-क्षेत्र केवल वेश्याओं तक ही रक्खें क्योंकि आप के कहे अनुसार वही आप से आत्मा परमात्मा की चर्चा करती हैं। साधु संन्यासियों से आप को क्या लेना देना है। देश के सम्माननीय साधु समाज पर रजनीश जी ने जो लांछन लगाया है, धर्म प्रेमी जनता इसे कभी सहन नहीं करेगी।

६. महापुरुषों की निन्दा

श्री रजनीश ने सभी सम्प्रदायों के महापुरुषों, गुरुओं और सुधारकों की निन्दा की है—

"अपनी ही आंख काम आ सकती है किसी और की नहीं। न महावीर की, न कृष्ण की, न बुद्ध की, न राम की और न किसी और की"

"सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण" पृष्ठ ११

"और न किसी और की" में स्वामी शंकराचार्य, गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह, महर्षि दयानन्द, परमहंस श्री रामकृष्ण स्वामी, विवेकानन्द आदि सभी महापुरुष आ जाते हैं। सभी महापुरुषों के निन्दक रजनीशजी के आडम्बर पूर्ण विचारों का प्रतिवाद करने के लिए आर्य समाजी, सनातन धर्मी, सिख, जैन, नामधारी के सभी विवेकशील व्यक्तियों को सम्मिलित रूप से आन्दोलन करना चाहिये।

७. उपदेश का विरोध

उपदेश नाम है उस प्रवचन का जो मानव जीवन को शुद्ध सात्विक और ऊंचा बनाये। उपदेश प्राप्ति के लिये ही सामान्य जनता साधुओं, महात्माओं, गुरुओं, विद्वानों और चरित्रवान् व्यक्तियों के पास पहुंचती है—पर उपदेश के सम्बन्ध में रजनीश जी के विचार क्या हैं, यह उन्हीं के शब्दों में देखिए: —

"जो भी उपदेश करते हैं, वह हिंसा करते हैं, वे पाप करते हैं"

"सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण" पृष्ठ ७

अब रजनीश जी के प्रवचनों में जाने वाले महानुभाव अपने मन में स्वयं ही विचार कर लें कि रजनीश जी के पास क्या लेने जाते हैं ? उपदेश तो वह देते नहीं क्योंकि इसके वह विरोधी हैं।

८. विवाह के विषय में अनर्गल विचार

श्री रजनीश Arranged Marriage (अर्थात् माता-पिता द्वारा बच्चों के विवाह की व्यवस्था) के घोर विरोधी हैं। पाश्चात्य देशों में प्रचलित प्रेम-विवाह (Love Marriage) के वह पोषक हैं। तनिक उनके उच्छृंखल विचार पढ़िये:—

(क) "मेरा मानना है कि जब तक arranged marriage जारी हैं तब तक मामला हल नहीं हो सकता। जब तक arranged marriage को माने चले जाते हैं तब तक जातियां टूट नहीं सकतीं और जैसे ही प्रेम-विवाह शुरू होंगे, फौरन टूट जाएंगे।" "युकान्द" पत्रिका, अंक ६ पृष्ठ २५

(ख) "अभी एक महिला आई। उन्होंने कहा मैं आपकी बातें सुन कर बिलकुल राजी हो गई हूं। मैं कहीं भी शादी कर सकती हूं अपनी लड़की की, लेकिन मेरी लड़की का एक मुसलमान से प्रेम है। लेकिन मैं यह शादी किसी भी हिन्दू सेकर

सकती हूं। लेकिन मैंने कहा तेरे करने का सवाल नहीं है। मैं जो कह रहा हूँ वह यह कि तुम शादी मत करना। लड़की का जहाँ प्रेम हो जाये वहीं वह जाये।"

'युक्रान्द" पत्रिका, अंक ६ पृष्ठ २६

हिन्दू समाज की पुत्रियों का मुसलमानों के साथ विवाह करने की यह प्रेरणा देना समाज के लिए कितना घातक है और फिर रजनीश जी के लिये तो वासना और प्रेम में कोई भेद है ही नहीं। अनुभवहीन लड़के-लड़कियों की उच्छृंखलता उनकी दृष्टि में प्रेम है। समाज के शरीर में कैसे प्राणघातक विचारों के वह इंजैक्शन लगा रहे हैं।

(ग) सनातन धर्म सभा अमृतसर के मन्त्री श्री जगन्नाथ जी मिश्रा ने मुझे बतलाया कि दिनांक ३। ५। ७० के धर्मयुग के अंक में रजनीश जी का एक लेख छपा है जिस में रजनीश जी ने कहा है कि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विवाह से पहले एक वर्ष लड़का-लड़की सहवास में रहें और फिर एक वर्ष के बाद मन माने तो विवाह कर लें न माने तो न करें।

दुःख है कि इस प्रकार की चरित्रहीनता के उपदेश देने वाले व्यक्ति को भी हिन्दू समाज में समर्थन और प्रोत्साहन मिल जाता है। भगवान् राम की भक्त जनता गम्भीरता से इस पर विचार करे।

९. श्रद्धा का विरोध और संदेह की शिक्षा

धार्मिक जगत् में श्रद्धा का बड़ा महत्व है और यह होना भी चाहिए। श्रद्धा के वातावरण में ही मनुष्य के अन्दर सात्विकता आती है। श्रद्धा अन्ध विश्वास नहीं अपितु सत्य पर आधारित एक निष्ठा है। श्रद्धा शब्द का अर्थ भी यही है— "श्रत्सत्यं दधाति यथा क्रियया सा श्रद्धा" अर्थात् "श्रत्" नाम है सत्य का और जिस क्रिया से यह सत्य आचरण में प्रतिबिम्बित हो उसी का नाम श्रद्धा है। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर ने एक स्थान पर लिखा है "श्रद्धा वह चिड़िया है जो प्रकाश का अनुभव कर लेती है और अंधेरे प्रभात में गाने लगती है।" महात्मा गान्धी का कहना है "श्रद्धा से मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? सब कुछ कर सकता है।" स्वामी विवेकानन्द जी ने लिखा "श्रद्धा का अर्थ अन्ध-विश्वास नहीं।" भगवान् कृष्ण ने गीता में श्रद्धा के सम्बन्ध में जो उदात्त भावना प्रकट की है वह तो सचमुच माननीय है, और वरदा वेद माता में भी लिखा है:—

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य तिम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापमेह नः॥ (ऋग्वेद)

महापुरुषों ने श्रद्धा को जितना महत्व दिया है, संशय (संदेह) की उतनी ही निन्दा की है, "संशयात्मा के लिए न यह दुनियां, न कोई सुख।" योगीराज भगवान् कृष्ण ने कहा संशयात्मा विनश्यति" अर्थात् संशयात्मा का नाश हो जाता है। पर रजनीश जी की तथाकथित मौलिकता का नमूना देखिये कि वह श्रद्धा की घोर निन्दा और संदेह की प्रशंसा करते हैं। उनकी पुस्तकों से ही उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) "श्रद्धा का महारोग" "सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण" पृष्ठ ८

(ख) "संदेह से बड़ी आध्यात्मिक और कोई क्षमता नहीं है। श्रद्धा से बड़ा पाप नहीं-संदेह से बड़ा धर्म नहीं।" "ज्योति शिखा" अंक १४ पृष्ठ ३३

(ग) "मैं श्रद्धा नहीं-संदेह सिखाता हूँ। क्योंकि श्रद्धा जड़ता लाती है और संदेह खोज में ले जाता है।" "ज्योति शिखा" अंक १४ पृष्ठ ८७

१०. परमात्मा के विषय में भ्रान्त धारणा

रजनीशजी की कुछ पुस्तकों को मैंने बड़े ध्यान से इसलिये पढ़ा कि परमात्मा के सम्बन्ध में उनकी मान्यता को समझ सकूं—मगर ज्यूं ज्यूं पढ़ता गया निराशा ही हुई। परमात्मा के सम्बन्ध में इनके विचारों में बहुत कन्फ्यूशन और भ्रान्ति पर लिखते हैं कि आत्मा खोजने वाला है और जिसकी खोज है वह परमात्मा है,[1] अर्थात् आत्मा और परमात्मा दो भिन्न २ स्वतन्त्र सत्तायें हैं और दूसरे स्थान पर लिख देते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक ही है।[2] एक स्थान पर लिखा है कि "ईश्वर व्यक्ति नहीं अनुभूति है"[3] और उसी पुष्ठ पर लिख देते हैं कि "ईश्वर की कोई अनुभूति नहीं होती।"[4] एक स्थान पर प्रेम को ही ईश्वर मानते हैं।[5] तो ईश्वर के स्थान पर जगत् को परमात्मा कहते हैं।[6] एक जगह पर पदार्थ (Matter) को ही परमात्मा माना है। इस सम्बन्ध में उनके थोड़े से शब्द पढ़िये:—

"परमात्मा है वह सो प्रतिक्षण चेतन है। पदार्थ और परमात्मा में कोई क्वालिटी का अन्तर नहीं, क्वान्टिटी का अन्तर है। कोई गुण का अन्तर नहीं है, मात्रा का अन्तर है। इसलिए, पदार्थ परमात्मा हो सकता है।" ("युगांर्द' अंक १८)

इन उद्धरणों से स्पष्ट विदित होता है कि परमात्मा के सम्बन्ध में रजनीश जी का चिन्तन अत्यन्त दोषपूर्ण, परस्पर विरोधी और भ्रान्त है।

इस लघु लेख में स्थानाभाव के कारण रजनीश जी की अनेक दूसरी मान्यताओं पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं-यह तो बड़ी पुस्तक में ही हो पायेगा। इनकी भाषण एवं लेखन शैली की विचित्रता यह है कि लम्बे लम्बे पैराग्राफ लिख जायेंगे जो ऊपर से आकर्षक लगेंगे, मगर गम्भीरता से चिन्तन करने पर उन में शब्दों के हेरफेर और मदारीपने के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा सामान्य व्यक्ति इस चतुराई को भांपने में असमर्थ रहता है जिस से वह भ्रांति का शिकार हो जाता है। इनके भाषणों और लेखों में इतने विरोधाभास हैं कि देख कर आश्चर्य होता है एक स्थान पर एक बात की पुष्टि करेंगे तो अन्यत्र उसी बात का विरोध कर देते हैं। ऐसे विरोधाभासों के अनेक उदाहरण मैंने अपने पास नोट किए हैं, जिन्हें यहां देना सम्भव नहीं। श्री रजनीश जी के अनुयायी स्थान-स्थान पर ऐसा प्रचार करते फिरते हैं और रजनीशजी भी अपने भाषणों में इसी प्रकार का संकेत देते हैं कि इनके चिन्तन में मौलिकता है, मगर उनके ग्रन्थों को पढ़ने और निष्पक्ष होकर विचारने से मैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि इनके चिन्तन में कुछ भी मौलिकता नहीं है—अधिकतर इनके विचार कहीं न कहीं से चुराये

१ देखिये "मैं कौन हूं ?" पृष्ठ ७ २ "साधना पथ" पृष्ठ ४६
३ "साधना पथ" पृष्ठ ६४ ४ ,, ,, ,, ६४
५ ,, ,, ६४ ६ ,, ,, ,, १६२

गये हैं, परन्तु उन्हें प्रस्तुत इस रूप में किया जाता है जैसे कि वह रजनीशजी का कोई मौलिक चिन्तन है। जहां २ से वह विचार संकलित किए गये हैं, उन स्रोतों के प्रति आभार प्रदर्शन की शिष्टता नहीं दिखाई गई। मैंने इनके ग्रन्थों से इस प्रकार के कई उदाहरणों को नोट भी किया है।

मेरी तो यही निश्चित धारणा है कि उनके ग्रन्थों में जहां कहीं भी कोई अच्छी बात है वह किसी न किसी दूसरे ग्रन्थ से ही प्राप्त की गई है मगर जहां कहीं मौलिकता के प्रलोभन में आकर इन्होंने अपनी ओर से कुछ घुसेड़ा है वहीं गड़बड़ हुई है, और इसी गड़बड़ के कारण कई स्थानों पर इनके भाषणों के समय प्रबुद्ध जनता ने इनका विरोध भी किया है। पटना के हिन्दू धर्म सम्मेलन में जहां भारत के मूर्धन्य विद्वान और महात्मा पधारे थे श्री रजनीशजी ने अपने भाषण में कुछ ऐसी असंगत बातें कहीं, कि भरी सभा में पुरी के शंकराचार्य जी महाराज को उनका प्रतिवाद करना पड़ा। दो तीन वर्ष हुए अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में भी आपने कुछ ऐसी बातें कहीं जिनका खण्डन दूसरे सभी महात्माओं ने किया। इस वर्ष जून १९७० में रजनीश जी के कुछ भाषण कम्पनी बाग अमृतसर में हुए जिसमें आपने वेदादि सत्शास्त्रों को ४-४ आने की घटिया पुस्तकें कहा और गीता तथा दूसरे धर्म ग्रन्थों के प्रति अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया तो जनता सहन नहीं कर सकी और इनका भाषण न हो पाया। अगस्त सन् १९७० में रजनीश जी लुधियाना गये और वहां अपने भाषण में इन्होंने कहा कि "भारत में सब गौओं को कतल कर देना चाहिए और हर शख्स को शराब पीनी चाहिए" इससे जनता ने उत्तेजित होकर विरोधी नारे लगाये। यह सब बातें समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसके अतिरिक्त ५ नवम्बर सन् १९७० को प्रातः जब श्री रजनीश फिर अमृतसर पहुंचे तो अमृतसर रेलवे स्टेशन पर हजारों की संख्या में जनता ने उन्हें काली झंडियां दिखाईं और घोषणा की हम वेद, शास्त्र, गीता, रामकृष्ण और गुरुओं की निन्दा नहीं सहेंगे। रजनीशजी कुछ कम्युनिष्टों और कुछ भ्रान्ति में फंसे अकालियों के संरक्षण में बड़ी कठिनाई से छिप कर बाहर आ सके।

मैं सभी जिज्ञासु बन्धुओं से यही निवेदन करूंगा कि—
(सब चमकने वाली वस्तुयें स्वर्ण नहीं होतीं) इस बात को ध्यान में रख कर विचार करें। एक व्यक्ति अच्छा बोलता है, तो यह आवश्यक नहीं कि वह ठीक भी बोलता हो। भगवान ने हमें बुद्धि दी है उसका आश्रय लेकर हमें सत्यासत्य का विचार करना चाहिए।

देश में बढ़ते हुए पाखंडों को मिटाने के लिए हमें सभी व्यक्ति-पूजक मत-वादों को मिटाने का व्रत लेना होगा। धर्म के नाम पर फैलते अधर्म ही धर्म के सबसे बड़े शत्रु हैं।

—भारतेन्द्र

—प्रो० रवीन्द्रकुमार एम० ए०

• सृष्टि का अद्भुत रहस्य

परम पिता परमात्मा की महान् शक्ति जगत् के उत्पन्न करने, उसकी स्थिति उसके प्रलय एवं उसे व्यवस्थित रखने में ही सार्थक है। एक बहुत ही सुन्दर उक्ति है:—

तेरी बेमिसाल कुदरत का हर एक पत्ते में दफ़्तर है।
तेरा देखा है सिक्काये सब्त हमने दाने-दाने में।"

सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में जगत् की स्थिति का निरूपण ऋग्वेद (१०/१२९/१, २, ३, ४, ५,) में किया गया है कि असत् शश विषाणवत् केवल शून्य-मात्र अभाव न था अपितु कारण रूप जगत् विद्यमान था। सत=कार्य रूप जगत् भी न था। उस समय 'रजः' पृथिव्यादि लोक भी नहीं थे। 'लोकारजांस्युच्यन्ते' (निरुक्त ४—३/ १९) जो आकाश से परे ऊपर के अर्थात् जो द्यौ आदि लोक हैं वे भी नहीं थे या महान् आकाश भी, शब्द की निष्पत्ति न होने और व्यवहार के न होने से नहीं था। किसी का आवरक—आच्छादक तथा आश्रय क्या हो सकता था? कोई भी आश्रय और आवरक नहीं था तब पानी-सा गहरा क्या था? जल क्या था? अर्थात् कुछ भी नहीं।

उस समय मृत्यु भी (जीवों के जीवनमय शरीर के न होने से) नहीं थी। और न तो जीवन ही था। रात्रि और दिन का ज्ञान भी सूर्य और चन्द्रमा के न होने से नहीं था। 'स्वधा'—प्रकृति और जीव सहित अकेला वह परमात्मा विना प्राण वायु के साँस लेता हुआ वर्तमान था। उससे परे उसके समान कोई न था।

सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व प्रलयान्धकार से परे आच्छादित तम (प्रकृति) था और यह सम्पूर्ण जगत् अप्रकेत (अप्रज्ञायमान) था, क्योंकि वह अपने सत्कारण प्रकृति में लीन था। परिणाम आदि गुणों से शून्य व्यापक परमात्मा से जो वह तमोनामा प्रकृति ढकी हुई थी वह एक सद्रूप सत्ता, परमात्मा से प्राप्त द्रव्य को कार्य में लगाने की इच्छा रूप तप से विकसित हुई।

सृष्टि से पूर्व परमात्मा के सर्वज्ञता-शक्ति या सर्वविचारमयी शक्ति का रेतः रूप काम = ईक्षण था अर्थात् परमात्मा ने जगद्रचना की इच्छा की। इसलिये ज्ञानी लोग हृदय में बुद्धि से विचार कर जानते हैं कि असत् = (कारण रूप प्रकृति) में सत् (कार्यरूप जगत्) का सम्बन्ध है अर्थात् कारण से कार्य पैदा होता है, इस सत्कार्य-वाद के नियम को जानते हैं।

परमात्मा के ईक्षण के अनन्तर प्रकाश की रश्मियाँ ऊपर और नीचे आश्चर्य रूप में फैल गयीं। पुनः उस प्रकाश से स्पष्ट होने लगा कि उस अवस्था में अपने अपने कर्मों का धारण करने वाले अनेकों बद्ध जीव तथा परमात्मा के संसर्ग से महिमा को प्राप्त हुए अनेकों मुक्त जीव थे। प्रकृति नीचे थी और परमात्मा का नियम ऊपर था अर्थात् प्रकृति परमात्मा के नियम से बँधी हुई थी। जब सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विद्यमान थी।

अब सृष्टि रचना किस प्रकार हुई यह जानना एक बहुत ही आवश्यक है? किन्तु इसका सर्वमान्य हल न तो आज भौतिक वैज्ञानिक दे सके हैं और न इधर-उधर की कहने वाले अन्य मतावलम्बी। केवल यही प्रश्न नहीं, न जाने कितनी ही ऐसी विस्मय में डाल देने वाली सृष्टि की अद्भुत बातें हैं जिनका यदि समाधान कहीं हुआ तो विश्व के महान् आदि ग्रंथ वेद, उपनिषद् और भारतीय दर्शन में। आज प्रायः हम आर्ष-ग्रन्थों को पढ़ते नहीं, सत्य तो यह है कि देखते भी नहीं। इतनी निराशा अपने धर्म-ग्रन्थों से और फिर भी सभी जिज्ञासाओं का उत्तर भी उनसे ही मिलता है। यह हमारी भूल नहीं बल्कि उस विज्ञान, संस्कृति तथा सभ्यता के साथ खिलवाड़ है जिसने मानव के लिये ही नहीं अपितु प्राणी मात्र की भलाई का विशाल कोष अपने में रख छोड़ा है।

सृष्टि रचना का क्रम, सांख्य दर्शन (१/६१) में महर्षि कपिल ने स्पष्ट किया है :—

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहंकारात्, पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।'

सत्व (शुद्ध) रजः (मध्य) तमः (जाड्य)—तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उससे पाँच तन्मात्रा सूक्ष्मभूत (शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध) और दस इन्द्रियाँ (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, गुदा) तथा ग्यारवाँ मन, पाँच तन्मात्राओं से पाँचभूत (आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी), ये चौबीस और पच्चीसवाँ पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। पंचभूत से विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, तरु, अन्नादि, तथा अन्न से वीर्य एवं वीर्य से शरीर। जीवधारियों से पूर्व पृथ्वी उसके पश्चात् वनस्पति, अन्न, पशु-पक्षी, कीट, पतङ्गादि तदन्तर मनुष्य।

इसी प्रकार सृष्टि विनाश में भी, सृष्टि रचना क्रम के विपरीत सम्पूर्ण व्यक्त पदार्थों—पृथ्वी का लय जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का तन्मात्राओं में, तन्मात्राओं का अहंकार में अहंकार, का महत्तत्व बुद्धि में और महत्तत्व बुद्धि का अव्यक्त प्रकृति में लय हो जाता है। क्योंकि "साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम्" (सांख्य० ६/४२) अर्थात् समता और विषमता के कारण उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। जब प्रकृति की समता होती है तब उत्पत्ति और जब विषमता होती है तब प्रलय होता है। सृष्टि के रूप रंग गुणादिकों का भेद इसी कारण है।

वास्तव में सृष्टि रचना बड़ी ही विचित्र किन्तु इसी विचित्रता में प्रभु की महिमा ओत प्रोत है। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ चाहे वह चेतन हो अथवा जड़, प्रभु का आभास कराने में समर्थ है। जिधर देखिये उधर प्रभु का महान् ऐश्वर्य, महान् सौन्दर्य तथा महान् माधुर्य झलक रहा है। बहुत ही सुन्दर उक्ति है :—

"हमें हर चीज में आई नज़र यारब अदा तेरी।
वे कैसे होंगे जिन लोगों ने तुझको बेनिशां पाया ॥"

महर्षि दयानन्द ने सृष्टि रचना पर विमुग्ध होकर सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि शरीर में किस प्रकार ज्ञान पूर्वक सृष्टि रची है जिसको विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, आँख की अतीव सूक्ष्म सिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के भागों का प्रकाशन, जीव के जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था भोगने के लिये स्थान विशेष का निर्माण, सब धातु विभाग करण, कला, कौशल स्थापनादि तथा नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत कृष्ण चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र, पुष्प फल, मूलनिर्माण मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्दमूलादि रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल सूर्य चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता। उर्दू के एक कवि ने लिखा है कि :—

"गुल क्या, ख़ार में क्या, सब में ही एकरंगे बहार।
खोइ कर चश्मे हक़ीकत को अगर देखेगा तू।"

बृहदारण्यकोपनिषद् में इस विषय के अन्तर्गत एक बड़ी ही रोचक कथा है:— वचक्नु की पुत्री गार्गी ने पूज्य ब्राह्मणों को निर्देश कर कहा है कि मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछूंगी यदि उनका उत्तर मुझे मिल गया तो फिर निश्चय समझूंगी कि ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को तुम में से कोई पण्डित पराजित करने योग्य नहीं है। उनकी ओर से किसी भी प्रकार की आपत्ति न देख, गार्गी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछे :— पहला प्रश्न था—

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक्पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिंस्तदोतं च प्रोतं चेति ॥ (अ० ३/ब्रा० ८/३)

हे याज्ञवल्क्य ! जो वस्तु द्युलोक से ऊपर है, जो वस्तु पृथ्वी से नीचे है, जो वस्तु इस द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में है और भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् ऐसा कहा जाता है वह सब किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य का उत्तर था—

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि ! दिवो यदवाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतं च प्रोतं चेति ॥
(अ० ३/ब्रा० ८/४)

हे गार्गी ! जो कुछ चराचर जगत् द्युलोक से ऊपर है, जो पृथिवी से नीचे है, जो इस द्यावा पृथिवी के मध्य में है, जो भूत, वर्तमान और भविष्यत् कहा जाता है वह आकाश में ओतप्रोत है, आकाश में आश्रित है।

प्रश्न का उचित उत्तर सुन गार्गी प्रसन्न हो गई और नमस्कार कर अपना दूसरा प्रश्न पूछा—

कस्मिन्नुखल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ (अ० ३/ब्रा० ८/७)

निश्चय ही यह आकाश किसमें ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—

होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखम मात्र मनन्तरमबाह्यम्, न तदश्नाति किंचन न तदश्नाति कश्चन ॥

(अ० ३/ब्रा० ८/८)

हे गार्गि ! निश्चय ब्राह्मण लोग यह वह अक्षर कहते हैं; आकाश के आश्रय अविनाशी वर्णन करते हैं। उस अक्षर को अस्थूल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, न लाल, न चिकना, छाया रहित अन्धकार रहित, अवायु, आकाश रहित असंग, रस रहित, गन्ध रहित, नेत्र रहित, श्रोत्र रहित, वाणी रहित, मन रहित, अग्नि आदि के उष्णभाव रहित, प्राण रहित, मुख रहित, परिमाण रहित, अन्तर रहित, बाहर रहित, ब्राह्मण वर्णन करते हैं। वह अविनाशी भगवान् परम शुद्ध-स्वभाव और निराकार है।

एतस्य वा अक्षरस्य प्रणासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृतेतिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशवन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमान देवा दर्वी पितरोऽन्वायत्ताः ॥

(अ० ३/ब्रा० ८/९)

हे गार्गि ! निश्चय इसी अक्षर की आज्ञा में, इसी अविनाशी परमेश्वर के नियम में सूर्य और चन्द्र नियमित होकर रहते हैं। इसी ही परमेश्वर की आज्ञा में हे गार्गि ! द्युलोक और पृथिवी लोक नियमित होकर रहते हैं। हे गार्गि ! इसी ही परमेश्वर की आज्ञा में निमेष, मुहूर्त्त, दिनरात, अर्द्धमास, मास, ऋतुएं और वर्ष धारण किये हुए रहते हैं; काल का नियन्ता भी वह ही है। हे गार्गि ! इसी ही परमेश्वर की आज्ञा में अनेक नदियाँ श्वेत पर्वतों से नीचे पूर्व को बहती हैं, अनेक पश्चिम को बहती हैं और जिस-जिस दिशा को अनुसरण करती हैं उसी के नियम में करती हैं। हे गार्गि ! इसी परमेश्वर की आज्ञा में मनुष्य दानशीलों की प्रशंसा करते हैं और पितरजन दर्वी के कड़छी के अनुगामी होते हैं, पितर आदरातिथ्य के चिह्न भोजन को आश्रित करते हैं। सर्व लोक लोकान्तर श्री भगवान् के शासन में हैं, सभी परिवर्त्तनों में उसका नियम काम करता है और पुण्यकर्म भी उसी के नियत किये नियम में होते हैं।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राणि,

अन्तवदेवास्य तद्भवति। यो वा एतदक्षरं गार्गि अविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथय एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः

(अ० ३/ब्रा० ८/१०)

हे गार्गि ! निश्चय जो मनुष्य इस ईश्वर को न जानकर, आराधकर इस लोक में बहुत सहस्र वर्षों तक होम करता है; यजन करता है और तप तपता है तो भी इस का वह कर्म अन्त-नाश वाला ही होता है। हे गार्गि ! निश्चय जो मनुष्य इस परमेश्वर को न जानकर, न आराधकर इस लोक से मर कर जाता है वह दीन है, जूए में जीते हुये दासवत् है। और हे गार्गि ! जो मनुष्य इस परमेश्वर को जानकर,

आराधन करके इस लोक से मर कर जाता है वह ब्राह्मण है, वह परमार्थ का ज्ञाता है। बहुत वर्ष सहस्र से जन्म जन्मान्तर अभिप्रेत है।

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्ट्रश्रुतं श्रोतमतं मंत्र विज्ञातं विज्ञातृ। नान्यदतोऽस्तिद्रष्ट्र नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ, नान्यदतोऽस्ति मन्तृ, नान्यदतोऽस्ति विज्ञातृ एतस्मिन्नु, खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति॥ (अ० ३/ब्रा० ८/११)

हे गार्गि! वह ही यह अक्षर अदृष्ट—नेत्र से न देखा हुआ—सबका द्रष्टा है, कान न सुना गया सबका सुनने वाला है, मन से न मनन किया गया सब मनन करने वाला है और बुद्धि से अगम्य सबका ज्ञाता है। इससे अन्य विश्व का द्रष्टा कोई नहीं है, इससे अन्य सब का श्रोता नहीं है, इससे अन्य सबका मनन करने वाला कोई नहीं है, इससे अन्य सबका ज्ञाता नहीं है। हे गार्गि! निश्चय इसी ही अक्षर भगवान् में आकाश जगत् का आदि कारण ओतप्रोत है। सर्वाश्रय ईश्वर ही है।

अपने दोनों प्रश्नों का यथेष्ठ उत्तर प्राप्त करके गार्गी बोली :—

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वम्, यदस्मान्नतस्कारेण मुच्येध्वम्। न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति। ततो ह वाचक्नव्युपरराम॥ (अ० ३/ब्रा० ८/१२)

हे पूजनीय ब्राह्मणो! यदि नमस्कार करने से इस याज्ञवल्क्य से तुम छूट जाओ, पराजय से बच जाओ तो इसी को बहुत मानो। इसका ज्ञान अगाध है। तुम में इस ब्रह्म वेत्ता को कोई कभी भी नहीं जीत सकेगा। तत्पश्चात् वचक्नु की पुत्री मौन हो गई।

शुभ कामनाओं सहित

नागरथ पेन्टस प्रा० लिमिटेड—

४६—फजलगंज कानपुर

(फैक्टरी व बिक्री कार्यालय)

शाखाएं—दिल्ली, पटना, कलकत्ता और रांची

निर्माता

उच्च कोटि के एनेमल व विशेष पेन्ट्स

ट्रेड्स-इन्डस्ट्री-और डिफैन्स

पंजीकृत कार्यालय २- टालसटाय मार्ग नई दिल्ली

—प्रो० कीर्तिस्वरूप रावत

पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण

न्यूयार्क टाइम्स के १६ सितम्बर १९२३ के अंक में भारत के एक "प्रभु" नामक बालक के तथाकथित पुनर्जन्म की स्मृतियों को प्रकाशित किया गया था। प्रभु की कथित पूर्वजन्म की स्मृतियों के अध्ययन पर आधारित एक लेख फ्रैन्च भाषा में एक फ्रान्सिसी पत्रिका 'रिव्यू मैटासाइकिक" के १९२४ (जुलाई-अगस्त) में प्रकाशित हुआ। यह अध्ययन किशनगढ़ के भूतपूर्व दीवान डा० राव बहादुर श्याम सुन्दर-लाल सी० आई० ई० के निर्देशन में किया गया था।

पिछली स्मृतियां

"हे राम पता नहीं मेरे बच्चे किस दशा में होंगे।" एक रात सलीमपुर (जिला भरतपुर राजस्थान) के खैराती का एक ४ वर्षीय पुत्र प्रभू अपनी माता के पास सो रहा था। माता बोली "क्या बकता है, कौन से बच्चे ? सोजा चुप रह।" बच्चा सो तो गया किन्तु चुप अधिक दिनों नहीं रह सका। वह बार-बार इसी तरह की बातें करता रहा। उसने बतलाया कि पिछले जन्म में उसका नाम हरबख्श था। वह हथरोई में रहता था। उसके (घेरू और श्यामलाल नाम के) पुत्रियाँ थी, जिनका विवाह क्रमशः खेड़ली के रामहेत और नवाड़ के गोकुल में हुआ था। उसने यह भी बतलाया कि उसने अपने मकान के अस्तबल में कुछ रु० गाड़े थे।

महाराजा के पास

यह खबर धीरे-धीरे हथरोई पहुँची। एक दिन हरबख्श का बड़ा लड़का बिना किसी पूर्व सूचना के सलीमपुर पहुँचा। कहा जाता है, बालक ने उसे तत्काल पहचान लिया। इसके पूर्व हथरोई से सलीमपुर जाने वाले किसी भी व्यक्ति की जानकारी नहीं पाई गई और न ही बालक कभी अपने पिता के साथ हथरोई ही गया, हथरोई के ही चौधरी भगवत सिंह ने जो कि उस समय भरतपुर के महाराजा के यहाँ काम करते थे, यह खबर सुनी तो उन्होंने इसका जिक्र महाराजा भरतपुरसे किया। महाराजा ने उसे महलों में बुलाया और पूछा "क्यों लड़के तेरा क्या नाम है ? और तू कहां का रहने वाला है ?"

किस जन्म का

लड़के ने तुरन्त पूछा "किस जन्म का पूछ रहे हैं महाराजा ! इस जन्म का या पिछले जन्म का ?" महाराजा ने कहा: "दोनों का ही बतलाओ।" इस पर

लड़के ने विनम्रता से कहा—"पिछले जन्म में मेरा नाम हरबख्श था और मैं हथरोई में रहता था। इस जन्म में मुझे प्रभु कहते हैं और मैं सलीमपुर का रहने वाला हूँ।" महाराजा ने पूछा "क्या तुम हथरोई के बारे में कुछ और बता सकते हो?" लड़का बोला: "हाँ, वहाँ एक छोटा-सा किला है, एक तालाब है। मेरे मकान का दरवाजा पूर्व की ओर है। महाराजा ने नत्थीलाल जी को बुलवाया जो कि हथरोई का ही रहने वाला था और हरबख्श का भतीजा लगता था। वह महाराजा का प्रमुख कोचवान था। लड़के ने देखते ही—"यह तो मेरे भाई का पहला लड़का है।" महाराजा अचंभित थे। सारी वार्ता का विधिवत अध्ययन डा० राव बहादुर श्यामसुन्दर लाल को सौंपा गया।

सभी बातें सही

यह अध्ययन दो भागों में बांटा गया,पहले बालक द्वारा बतलाई गई सब बातों को उसके पिता के घर लिपिबद्ध कर लिया गया, फिर बालक को हथरोई ले जाया गया और वहां गांव के प्रमुख व्यक्तियों के बीच उसके द्वारा बतलाई गई बातों की जांच की गई। बालक द्वारा वर्णित लगभग सभी बातें सही पाई गई। अब बालक को कहा गया वह अपना मकान बतलाये, आगे-आगे बालक चला और पीछे-पीछे भीड़। बालक कुछ कदम चलकर सोचने लगता। फिर चलता, फिर कुछ आगे बढ़ जाता। एक स्थान पर दो रास्ते बिलकुल अलग जाते थे लेकिन उस मोड़ से बालक निसंकोच एक राह पर बढ़ता गया और सीधे हरबख्श के मकान पर पहुंच गया। पास के मकान के बारे में पूछने पर, प्रभू ने कहा यह रामपाल जाट का मकान है और वह मकान वास्तव में रामपाल जाट का ही था। हरबख्श के मकान के सामने उसी गाँव का श्री गोविन्द नाम का एक ब्राह्मण खड़ा था। उसे देखते ही प्रभू चिल्लाया, "अरे श्री गोविन्द याद है इस मकान को लेकर अपने में एक दिन लड़ाई हो गई थी? तुम तलवार लेकर आगये थे और मैंने तलवार फेंक दी थी।" वास्तव में ऐसा हुआ था। इसके बाद प्रभू ने वह स्थान बतलाया जहां पर कि उसने ५ रु० गाड़े थे। ये रुपये उसे एक यजमान से भेंट के रूप में प्राप्त हुये थे। उस स्थान को सबके सामने खोदा गया तो उसमें एक छोटा मिट्टी का बर्तन निकला और उसमें ५ रु० पाये गये। दो एक दिन हथरोई में रहकर बालक वापस सलीमपुर आ गया।

२—मनेश

मनेश भी लगभग चार साल का ही था, जब सबसे पहले एक दिन अपने माता के द्वारा पीटे जाने पर उसने कहा था, माँ मुझे पीटो मत वरना मैं अपने गाँव "अठानी" चला जाऊँगा, मैं उसी गाँव का रहने वाला हूँ और मेरा नाम तो भजन-सिंह है वहाँ मेरी औरत, माँ, भाई, और बेटी है। मेरे एक मकान, कुआँ, बाग, और खेत है। माँ ने उसकी और पिटाई की और उसे चुप कर दिया, लेकिन लड़का अपने साथियों और परिवार में अठानी को बारे में जिक्र करता रहता। पहले तो कोई भी कुछ समझ नहीं पाया लेकिन बाद में पता लगा कि वह इटरानी नामक गाँव के बारे में कह रहा है। पाठशाला में जब वह अपने साथियों से इस प्रकार की बातें करता तो सब उसकी खिल्ली उड़ाते। इतना सा लड़का और बातें करता अपने बेटे बेटियों की।

आँखों में आँसू

एक दिन मनेश के दादा को यह बात पता लगी तो उन्होंने कुछ दिलचस्पी ली। कुछ दिन बाद इटरानी से भवन सिंह का भाई भूरेसिंह मनेश के पास गाँव चाँद

गढ़ी पहुँचा। कहा जाता है कि बालक ने तुरन्त ही भूरे सिंह के हाथ जोड़े और आँखो में आँसू भर आए। भूरेसिंह ने अपने रिश्तेदारों के बारे में मनेश से अनेक प्रश्न किये। कहा जाता है कि मनेश ने उन सब के सही उत्तर दिये। (भजन सिंह की मृत्यु लगभग चार वर्ष पूर्व ही हुई थी। वह अपने पीछे पत्नी और एक पुत्री को छोड़कर मरा था।) जब वह सूचना भजन सिंह की विधवा अयोध्या देवी के पास पहुँची तो वह अपनी जेठानी को साथ लेकर चाँदगढ़ी पहुँची।

माँ कौन-सी

यह दोनों ही औरतें लम्बे और छरहरे बदन की थी। दोनों ने ही घूँघट निकाल रखा था। जब वे दोनों चाँदगढ़ी पहुँची तब गांव वाले एकत्रित हो गये और उन्होंने मनेश को बुलवाया।

मनेश की परीक्षा के लिए मनेश के ताऊ ने जानबूझकर गलत प्रश्न पूछा "बताओ इनमें से तुम्हारी माँ कौन-सी है?" "माँ नहीं है इनमें से वह तो मेरी भाभी है और यह पत्नी है।" मनेश ने अयोध्या देवी का हाथ पकड़ते हुए कहा।

गोपनीय बातें

दोनों स्त्रियां मनेश को घर के अन्दर ले गई। अयोध्या देवी ने उस से एकान्त में पूछा: क्या तुम्हें हमारे बीच हुई कोई खास घटना याद है? मनेश ने तुरन्त कहा "तुम्हें एक बार रई (मथनी) से पीटा था, उस दिन मैं आगरा से इण्टर की परीक्षा देकर लौटा था और मुझे पता लगा था कि मां और तुम्हारे बीच झगड़ा हुआ था। रई का सिरा टूट गया था और तुम्हारी बाँह पर चोट का निशान बन गया था।" दोनो स्त्रियां रात वहीं रहीं, कहा जाता है कि मनेश ने पति-पत्नी के बीच गोपनीय जीवन से संबन्धित बहुत-सी बातें अयोध्या देवी को बताईं। अयोध्या देवी को पूर्ण विश्वास हो गया और दूसरे दिन सुबह उन्होंने मनेश के दादा से आग्रह किया कि वे मनेश को कुछ दिन के लिए उनके साथ भेज दे। इटरानी ले जाने वाले तांगे से सभी व्यक्ति गांव से लगभग तीन फर्लांग दूर ही उतर गये।

माँ की गोद में

गाँव के कुछ लोगों ने मनेश को घेर लिया और उससे बोले कि अगर वास्तव में तुम भजन सिंह हो तो तुम आगे चलकर अपना घर ढूँढ़ लो। कहा जाता है कि मनेश सीधा अपने घर पहुँच गया और वहाँ जाकर भजन सिंह की मां की गोद में बैठ गया। वहाँ उसने अपने पढ़ने के कमरे, किताबें आलमारियाँ मकान के अन्य कमरे कुआ, खेत आदि सब पहचान लिया। मनेश ने यहतक बतलाया कि विवाह के पश्चात् "सुहागरात" किस कमरे में मनाई थी।

ससुराल में

मनेश पुनः जब चाँद गढ़ी लौट आया कुछ दिनों बाद उसने भजन सिंहके श्वसुर के गांव जहाँ कि अयोध्या देवी थी, जाने की इच्छा प्रकट की। बाद में जब उसे वहाँ ले जाया गया तो वहाँ उसने भजन सिंह की सास व अन्य रिश्तेदारों तथा कुछ गाँव के लोगों को पहचान लिया। भजन सिंह की मृत्यु के पश्चात् उस मकान में कुछ परिवर्तन किये गये थे, मनेश ने स्वयं ही इन परिवर्तनों का उल्लेख किया। यहाँ मनेश ने भजन सिंह की उस बेटी को भी देखा जो कि भजन सिंह की मौत के समय केवल

२ साल की थी। दोनों का मिलन बड़ा हृदयस्पर्शी था। ऐसा लगता था कि उसकी पिछली स्मृतियों ने मनेश के वर्त्तमान जीवन को बहुत अधिक प्रभावित कर दियाथा।

एक हिन्दू विधवा का किसी अनजान बालक को अपना पति स्वीकार कर लेना निःसंदेह एक असाधारण बात है। प्रमाण की शर्त एक तटस्थ वैज्ञानिक को कठोर होगी या एक विधवा हिन्दू नारी की जिसके लिए पतिव्रत धर्म से, लोक परलोक में कहीं भी कुछ, बढ़कर नहीं है कहना मुश्किल है।

वैज्ञानिक कठिनाइयाँ

तथाकथित पुनर्जन्म की घटनाओं का पूर्ण रूपेण वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करना बड़ा कठिन होता है। प्रायः उन घटनाओं की सूचना उस समय मिलती है जब कि बालक अपनी स्मृतियों को पूर्ण रूप से भूला होता है। यदि इन स्मृतियों को जान बूझ कर दबाने का प्रयत्न किया जाता (जैसा कई बार होता है) तो भी स्वाभाविक रूप से भी व्यक्ति इन स्मृतियों को धीरे धीरे भूलता जाता है। दूसरे वैज्ञानिक, के स्थल पर पहुँचने से पूर्व ही घटना की सत्यता को संबन्धित व्यक्ति,अपने ही तरीकों से जो कि बहुधा अवैज्ञानिक और अविश्वसनीय होते हैं परख चुके होते हैं। तीसरे, दोनों ओर समूहो में इतना परिचय बढ़ गया होता है कि यह जानना बहुत कठिन हो जाता है कि किसी स्मृति की जानकारी सामान्य प्रश्नों द्वारा प्राप्त नहीं हुई है t यह तो कुछ साधारण-सी कठिनाइयाँ हैं वास्तविक अध्ययन उनकी जटिलताओं से भरे होते हैं।

●

पसीने को कमाई

महान् प्रकृति की इच्छा तो यही है कि हम अपनी रोटी पसीना बहाकर कमायें इसलिये जो आदमी अपना एक मिनट भी बेकारी में बिताता है, वह उस हद तक अपने पड़ोसियों पर बोझ बनता है। और ऐसा करना अहिंसा के बिलकुल पहले ही नियम का उल्लंघन करना है। अहिंसा यदि अपने पड़ोसी के हित का ख्याल रखना न हो, तब तो उसका कोई अर्थ ही न रहे। आलसी आदमी अहिंसा की इस प्रारम्भिक कसौटी में खोटा सिद्ध होता है।

कर्त्तव्य और अधिकार

अधिकारों की उत्पत्ति का सच्चा स्रोत कर्तव्यों का पालन है। यदि हम सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो अधिकारों को ज्यादा ढूंढने की जरूरत नहीं रहेगी लेकिन यदि हम कर्त्तव्यों को पूरा किये बिना अधिकारों के पीछे दौड़े, तो वह मृग-मरीचिका के पीछे पड़ने जैसा ही व्यर्थ सिद्ध होगा। जितने हम उनके पीछे जायेंगे उतने ही वे हमसे दूर हटते जायेंगे। यही शिक्षा श्रीकृष्ण ने इन अमर शब्दों में दी है—"तुम्हारा अधिकार कर्म में ही है, फल में कदापि नहीं।" यहां 'कर्म' कर्त्तव्य और 'फल' अधिकार है।

—महात्मा गांधी

वेद-भाष्य प्रकाशन के लिए

=

अधिक से अधिक प्रतियों का आदेश धन सहित १५ सितंबर तक भिजवाइए

=

जो भी आप की शक्ति हो
उदारता से इस पवित्र यज्ञ में
दान-आहुति दीजिए

=

केवल २०० प्रतियाँ हम आर्ट पेपर पर भी छाप रहे हैं। उनका मूल्य १०१) होगा।
जो चाहें वह १०१) भेज दें

=

कुल ५५०० प्रतियां वेदभाष्य की छप रही हैं—
यदि आप का उत्साह जागेगा तो यह संख्या
१० हजार भी हो सकती है—क्या इच्छा है?

=

आप वेद-भक्त बनिए! वेद-प्रचारक बनिए!
सर्वत्र वेद फैलाइए: घर-घर में वेद पहुंचाइए।

=

प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए
'वेद' पढ़िए! पढ़ाइए! फैलाइए!

विनीत—

—जगदीश विद्यार्थी एम. ए. —मनोहर विद्यालंकार

संयोजक—

वेद भाष्य प्रकाशन समिति
दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली-५

वेद भाष्य प्रकाशन के प्रति

उत्तर प्रदेश के राज्य मंत्री श्री पं० प्रेमचन्द शर्मा लिखते हैं,

श्री भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने कुछ वर्षों से १५९७ हरध्यानसिंह मार्ग दिल्ली से जन-ज्ञान मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यों तो इस पत्र का प्रत्येक अंक पठनीय और संग्रहणीय होता है, परन्तु इसके विशेषांक अत्यन्त उपयोगी होते हैं। उनमें आर्य बन्धुओं के स्वाध्याय की ठोस और उपादेय सामग्री रहती है। इस संस्थान ने अब तक हिन्दी अंग्रेजी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ आर्य जनता को भेंट किये हैं।

इसी संस्थान ने आर्य समाज स्थापना शताब्दी के पुण्य अवसर पर चारों वेदों का हिन्दी भाष्य एक जिल्द में आर्य बन्धुओं को भेंट करने का निश्चय किया है। इसका मूल्य तो संस्थान ने ५५) रक्खा है, पर १५ सितम्बर तक पेशगी रुपया भेजने वाले को यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ केवल ३५) रुपये में देने की घोषणा की है। **आर्य समाजों को इसके लिए पेशगी रुपया भेज कर प्रकाशक को सहयोग प्रदान करना चाहिए,** ताकि शीघ्र से शीघ्र यह अपूर्व ग्रन्थ उपलब्ध हो सके।

=

अखिल भारतीय परिगणित जातीय परिषद् के अध्यक्ष आचार्य गुरुप्रसाद लिखते हैं—

आर्य समाज द्वारा हिन्दू धर्म में नया मोड़

श्री मद्दयानन्द संस्थान का नाम हिन्दू-धर्म के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा

अस्पृश्यता का हिन्दु-धर्म में कोई औचित्य है ही नहीं; इसी बात की पुष्टि के लिये जिस वेद विद्या के पठन-पाठन के लिये मनु जी महाराज ने शूद्रों और स्त्रियों को अयोग्य बनाया हुआ था और धार्मिक कठमुल्ला इसे शाश्वत सिद्धान्त मानकर मानवता का सदा तिरस्कार किया करते थे। किन्तु आज हिन्दु धर्म में नये क्षितिज और आयाम का श्रीगणेश हुआ है। श्रीमद्दयानन्द संस्थान्, हरध्यानसिंह रोड, नई

दिल्ली-५ की ओर से चारों वेदों को हिन्दी भाषा में एक ही जिल्द में छपाकर प्रकाशित करने की घोषणा की है, जो अत्यन्त प्रशंसनीय बात है। हिन्दी भाषा में होने के कारण वेद विद्या का प्रचार न केवल हिन्दुओं में होगा, बल्कि हिन्दी ज्ञान रखने वाले संसार भर के लोगों में होगा और वह अपवाद हमेशा के लिये खत्म हो जायेगा कि वेदों के पढ़ने के अधिकारी शूद्र या स्त्रियां नहीं है।

जिस भाषा को किसी समुदाय विशेष तक सीमित किया कि वह लोप हो जाती है। संस्कृत भी उसी दोष से पीड़ित है। यह देव भाषा बनी कि कुंए के जल के समान सीमित सी संकुचित सी अप्रवाहमान बनकर रह गई और हिन्दी भाषा एक प्रवाहमान गंगा है, जिसमें अन्य नदी नाले पड़कर भी गंगा जल हो जाता है। चारों वेदों को हिन्दी भाषा गंगा में प्रवाहमान करने के लिये श्रीमद दयानन्द संस्थान का नाम हिन्दु धर्म के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

आर्य समाज मंडी के प्रधान श्री दीनानाथ जी के विचार

जुलाई, अगस्त १९७२ के "जन ज्ञान" में यह सूचना पढ़ कर अति प्रसन्नता हुई कि आप चारों वेदों का हिन्दी भाष्य एक जिल्द में छपवा कर प्रकाशित करनाचाहते हैं सचमुच आर्य्य समाज के इतिहास में यह पहला प्रयास है। इस के लिए मैं आप को हार्दिक वधाई पेश करता हूँ। जन कल्याण के लिये यह बड़ा महत्व पूर्ण पग है। जब तक वैदिक साहित्य को हम सस्ता नहीं कर सकेंगे तब तक भगवान की कल्याणी वाणी का प्रसार नहीं हो सकेगा। पुनः वधाई हो।

मैंने अपने दिल में यह संकल्प किया है कि अपने क्षेत्र में न्यून से न्यून ५० ग्राहक पैदा करूं इस भाष्य के लिये।

—: भारत मेरा अति महान :—

मेरी नयन-ज्योति ! मेरा प्राण, मेरा भारत अति महान।
उत्तर तेरे खड़ा हिमालय अपनी छाती तान,
गङ्गा यमुना तेरी बाहें मालव, तेरा प्राण।
तेरो गोद गरव-गर्वीलो, हुए जहाँ शूर लासानी,
शेर सुभाष, पटेल नीति-प्रिय, बापू से सेनानी !
शिवि, दधीचि राणा प्रताप सम प्रकट हुए गुणवान।
शुकदेव विरागी, दयानन्द अनुरागी और वशिष्ठ सम ज्ञानी,
तेरी महिमा गा-गा कर है धन्य हुई जिनकी वाणी,
मेरी नयन-ज्योति ! मेरा प्राण, मेरा भारत अति महान !!

—प्रह्लाददास

सत्यार्थ-प्रकाश

घर-घर में पहुँचा कर संसार
का अंधकार दूर कीजिए

=

उपहार संस्करण मूल्य ४)
कपड़े की बढ़िया जिल्द : बढ़िया कागज :
स्क्रीन प्रिंटिंग ३२५) सैकड़ा

=

राज संस्करण : बढ़िया जिल्द : तिरंगा आवरण :
बढ़िया कागज : डस्ट कवर सहित—मूल्य ३)

=

१०० प्रतियां या अधिक मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा
२५० तक या अधिक पर ३३ प्रतिशत कमीशन

=

लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर सर्वश्रेष्ठ :
सुन्दर : आकर्षक सत्यार्थ प्रकाश भारी
संख्या में मंगाइए : बांटिए

=

जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

नोट—भविष्य में सत्यार्थ प्रकाश के इन्हीं दोनों संस्करणों के ही आदेश स्वीकार्य होंगे। पहला सब समाप्त है।

—श्री 'माधव'

ऐतिहासिक कहानी

सभ्यता का विध्वंस

सिन्धु नदी के तट पर बसा सक्खर नगर बहुत से लोगों ने देखा होगा। आज से पांच-छह हजार वर्ष पूर्व इसी नगर से कुछ दूर एक बहुत बड़ा नगर बसा था। नदी के तूफानी पानी से नगर की रक्षा के लिए एक बड़ा बांध बांधा गया था। भरे भादों की एक संध्या को जब सिन्धु का पानी बांध तोड़ डालने के लिए उससे उमड़-उमड़कर टकरा रहा था और आकाश में बादल गरज रहे थे तथा बिजली कड़क रही थी, तब उस बांध पर दो व्यक्ति परस्पर बातें करते हुए टहल रहे थे। टहलने वालों में से एक बांध की देख-रेख करने वालों का अधिकारी जलपति था और दूसरा नगर का सेनापति।

जलपति सेनापति से बातें कर रहा था। आसमान में जब बादल गरजते और बिजली कड़कती है तब मेरा कलेजा कांपने लगता है। वर्षा में नदी का उमड़ा हुआ पानी जब बांध से टकराने लगता है तब ऐसा जान पड़ता है कि कोई मेरी छाती पर हथौड़े मार रहा है।

सेनापति बोला—परन्तु मित्र! मेरी समझ में तुम इतने कमजोर नहीं हो। तुम्हारी उम्र इस बांध की देख-रेख करने में ही नहीं बीती है। तुमने कई लड़ाइयों में भी हिस्सा लिया है और अपने जौहर दिखाए हैं।

जलपति ने कहा—लेकिन सवाल मेरी कमजोरी का नहीं है। तुम जानते हो कि बांध बहुत पुराना हो गया है और पांच वर्षों से इसकी मरम्मत पर एक पैसा खर्च नहीं किया गया है। शहर के प्रबन्ध की बागडोर जब बड़े-बूढ़े और अनुभवी व्यक्तियों के हाथों में थी तब हर वर्ष इसकी मरम्मत होती थी और यह वर्षा में बढ़ती हुई तूफानी नदी का मुकाबिला करने के लिए तैयार रहता था। पांच वर्षों से नगर के प्रबन्ध की बागडोर नए और नवयुवक लोगों के हाथ में आ गई है जो बांध की मरम्मत पर पैसा खर्च करना बिल्कुल बेकार समझते हैं। इसलिए जब बादल

गरजते हैं, बिजली कड़कती है और पानी बरसता है तब मुझे मालूम होता है कि अब बांध जल्दी टूट जायेगा और यह नगर सिन्धु के प्रवाह में विलीन हो जाएगा।

सेनापति ने कहा—ओह! समझा, लेकिन नगर वालों की बुद्धि पर तो पत्थर पड़ गए हैं। उनको बड़े-बड़े जल विहार (हमाम) और उनकी सजावट पर पानी की तरह पैसा बहाने की धुन लगी है। इस बीच में कई जल विहार बन चुके हैं, उनमें बाजे बजते हैं, सुन्दरियां नाचती हैं और नगर के प्रबन्धक छाती तक पानी में कूदकर आनन्द करते हैं।

तुम जब कहते हो कि बांध की मरम्मत की जाए तब खजाने में पैसा नहीं होता और मैं जब फौज बढ़ाने तथा नगर के पश्चिम की ओर रक्षा के लिए दीवार बनाने की बात उठाता हूं तो लोग हंस देते हैं।

जलपति दुखभरे स्वर में बोला—वे लोग हम दोनों को पागल समझते हैं। कहते हैं बुढ़ापे में इन दोनों की अकल सठिया गई है।

सेनापति बोले—हाँ! तुमको याद होगा। तीन साल पहले मैंने तुमको इसी बांध पर एक पशु का चित्र दिखाया था। चित्र मेरा एक गुप्तचर बनाकर लाया था। यह पशु उसको यहाँ से ५० कोस पश्चिम में एक खेत में चरता हुआ दीख पड़ा था। मैंने कहा था कि यह उस तेज दौड़ने वाले पशु का चित्र है जिस पर चढ़ कर पश्चिम के लोग इधर के नगरों पर आक्रमण कर रहे हैं। इधर सवारी के लिए ऐसा कोई तेज दौड़ने वाला पशु नहीं है, इसलिए आक्रमण करने वाले जीत जाते हैं। हमारे नगर से ५० कोस की दूरी पर जब यह पशु दीख पड़ा है तब इसके स्वामी भी कहीं आसपास होंगे और हमारे नगर पर भी उनका आक्रमण होगा।

जलपति ने कहा—मुझे अच्छी तरह याद है। तुमने शहर को उनका मुकाबिला करने के लिए तैयार हो जाने को कहा था और सुझाव दिया था कि शहर के पश्चिम में एक बड़ी दीवार बना दी जाए।

सेनापति बोले—हाँ! भरी सभा में मुझे बेवकूफ बनाया गया। तुमने मेरा समर्थन किया था तो कहा गया कि ये लोग अपने आदमियों को काम में लगाकर पैसा कमाना चाहते हैं। आखिर पिछले वर्ष उन लोगों ने उन्हीं जानवरों पर बैठकर जब हमारे शहर पर हमला कर दिया तब मालूम हुआ कि उस जानवर का नाम घोड़ा है।

जलपति ने कहा—हाँ, और तब हमारे प्रबन्धकों ने उनके सामने घुटने टेके, नाक रगड़ी, चाँदी-सोने और हीरे जवाहरात की भेंट और महीनों तक के लिए खाने-पीने लायक रसद देकर उन्हें विदा किया।

सेनापति बोले—तब तो वे विदा हो गये थे, लेकिन मुझे आशंका है कि इस वर्ष वे फिर आयेंगे और हमारे प्रबन्धक उनको प्रसन्न करने के लिए चाहे जो करें, वे विदा न होंगे बल्कि हमारे घर लूटेंगे, हमारी स्त्रियों को बेइज्जत करेंगे और हमारे पैरों में गुलामी की बेड़ियां डाल देंगे। पिछले वर्ष उनकी संख्या कम थी, वे पूरी तैयारी के साथ नहीं आये थे, इसलिए भेंट लेकर लौट गये। अब उनको मालूम हो गया है कि हमारे पास अपार सम्पदा है। अब वे हमें गुलाम बना देंगे, हमारी छाती पर मूंग दलेंगे और हमको इन्हीं आंखों से अपनी दुर्दशा देखनी पड़ेगी।

जलपति बिजली की तरह कड़क कर बोले—कभी नहीं। हम मर जायेंगे, मिट

जायेंगे लेकिन गुलाम कभी न होंगे। हमला करने वाले हमारे जीतेजी हमारी स्वतंत्रता कभी छीन नहीं सकते।

सेनापति और जलपति की बातचीत को एक पखवाड़ा भी न बीता था कि पश्चिम की ओर से आने वाले घुड़सवारों ने शहर पर हमला कर दिया। संध्या हो गई थी। आकाश में तारे चमकने लगे थे। शहर के ऊंचे-नीचे और छोटे-बड़े मकानों में दिए जल गये थे। सेनापति और जलपति उस दिन भी बांध पर टहल रहे थे। पूरब की ओर से अचानक उठा हुआ एक काला बादल देखकर वे दोनों बांध से उत्तर की ओर बढ़े, लेकिन चौंक कर खड़े हो गए। पश्चिम की ओर से रोशनी की लम्बी, लम्बी लहरें लपकती हुई चली आ रही थीं। थोड़ी देर में लहरें कुछ निकट आ गईं और छिटक गईं जैसे बसन्त के बगीचे में छोटे-छोटे फूल खिल जाते हैं। ऐसा मालूम होने लगा जैसे मणियों वाले असंख्य साँप शहर की ओर सरकते चले आ रहे हैं।

जलपति ने कहा—मालूम होता है वे आ गए हैं।

सेनापति बोले—हाँ, उस दिन दोपहर में धूल के बादल उड़ाते हुए आए थे, आज रात के अन्धेरे में मशालें जलाकर आ रहे हैं। तब वसन्त में आए थे, अब वर्षा भी नहीं बीतने पाई।

जलपति ने कहा—तब थोड़े से थे, अब असंख्य-अगणित जान पड़ते हैं। पश्चिम से लकर उत्तर तक का सारा मैदान भरा दीख पड़ता है।

सेनापति बोले—चलो, नगर के प्रबन्धकों को बताएं।

जलपति ने लम्बी साँस लेकर कहा—नगर के प्रबन्धक—अच्छा चलो।

जलपति और सेनापति जानते थे कि शहर के प्रबन्धक स्नानागार में जल-विहार कर रहे होंगे। वे लपकते हुए सबसे बड़े स्नानागार के फाटक पर पहुंचे। नगर के कुछ लोग भी फाटक पर जमा हो गए थे और अपने भयभीत स्वर में कोलाहल पैदा कर रहे थे; परन्तु स्नानागार में पूर्ण शान्ति थी। नगर-प्रबन्धक जल-विहार करने के साथ-साथ संगीत और सुन्दरियों के नृत्य का आनन्द ले रहे थे। सेनापति ने प्रधान को आकर्षित करते हुए कहा—वे फिर आ गए।

प्रधान प्रबन्धक बोला—कौन ? कौन फिर आ गए हैं ?

सेनापति ने कहा—वही घुड़सवार।

प्रधान प्रबन्धक—तो हमारे आनन्द में विघ्न डालने की क्या जरूरत थी—आ गए तो चले जाएंगे; जैसे पहले चले गए थे।

सेनापति ने कहा—इस बार जाते दिखाई नहीं पड़ते। बहुत बड़ी संख्या में आए हैं। हमें लूट कर या गुलाम बना कर ही मानेंगे।

सहायक प्रबन्धक खीझ भरे स्वर में बोला—तो हम क्या करें। नगर की रक्षा करना तुम्हारा काम है—जाओ उनसे लड़ो।

सेनापति का चेहरा तमतमा उठा। आवेश में वे बोले—नगर की रक्षा करना मेरा काम है तो मैं प्राण निछावर करने के लिए भी तैयार हूं; लेकिन मेरे और थोड़े-से विश्वासी सैनिकों के प्राण दे देने से नगर की रक्षा नहीं हो सकती।

प्रधान प्रबन्धक—इसमें हमारा क्या दोष है ?

सेनापति ने कड़कते हुए उत्तर दिया—तुम्हारा क्या दोष है ? चार साल से तुमने सैनिकों को धन नहीं दिया। वे दूसरे कामों में लग गए या शहर छोड़कर चले गए हैं। देखभाल न होने के कारण अस्त्र-शस्त्र बेकार हो गए हैं। तुम लोगों की

देखा-देखी नगर के निवासी भी स्नानागारों में विलास करने लगे हैं। लड़ना-भिड़ना भूल गए हैं। हमारे जासूस तुम्हारे आनन्द में विघ्न डालने वाले समाचार न ले आवें इसलिए तुमने उनको पकड़ कर मरवा डाला है और अब पूछते हो कि हमारा क्या दोष है? तुम मूर्ख तो हो ही बेशर्म भी कम नहीं जान पड़ते।

उपप्रबन्धक ने कहा—अच्छा तो तुम गालियाँ देने लगे। बताते क्यों नहीं कि क्या किया जाए, हम लोग क्या करसकते हैं? सेनापति ने शांत होकर उत्तर दिया—देर बहुत हो गई है। शत्रु इस बार बहुत संख्या में आये हैं और घोड़े जैसे तेज सवारी पर हैं। फिर भी हम सब बच्चे, बूढ़े, नर-नारी उठ कर खड़े हो जाएं, जसे भी अस्त्र-शस्त्र हैं उन्हें सम्भाल लें और शहर के हर घर को मजबूत मोर्चा बनाएं तो शायद कोई राह निकल आए। राह मिलेगी तो प्राण सम्मान के साथ दिये जा सकेंगे।

जलपति ने कहा—मैं सेनापति के साथ पूरी तरह सहमत हूं। आनन्द विहार को छोड़कर हमें लड़ने के लिए तय्यार हो जाना चाहिए।

प्रधान प्रबन्धक बोले—तुम दोनों बूढ़े एक ही जबान से बोलते हो, लेकिन मैं लड़ना भिड़ना पसन्द नहीं करता। सेना से सोना अधिक शक्तिशाली होता है। तुम दोनों सवेरे काफी सोना लेकर उनके पास जाओ और भेंट कर आओ। वे चले जाएंगे।

सेनापति का स्वर फिर गरम हो गया। उसने कहा—मैं सैनिक हूं। युद्ध करना और युद्ध में प्राण देना जानता हूं। सोने की दलाली करना मेरा काम नहीं है। वह तुम्हीं करो।

प्रधान प्रबन्धक ने कहा—अच्छी बात है। सवेरे हम ही देख लेंगे। अब तुम दोनों जाओ—आराम करो और हमें भी करने दो।

निराशा और क्रोध से भरे हुए सेनापति तथा जलपति स्नानागार से बाहर निकल आये; परन्तु वे अपने घर नहीं पहुंचे। बाँध के उपर से उन्होंने देखा कि मशाल वाले घुड़सवारों ने पश्चिम और उत्तर की ओर से शहर को घेर लिया है। जहाँ तक दृष्टि जाती है—वहाँ तक मशालें ही मशालें दीख पड़ती हैं। दोनों थोड़ी देर परामर्श करते रहे। फिर रात के पिछले पहर में वहीं मिलने का निश्चय करके अलग हो गए।

पूर्व में आसमान पर जब सुबह की सफेदी फैली, तब नगरवासियों ने देखा कि शहर के निकट का सारा मैदान घुड़सवारों से भरा है। कुछ घुड़सवार अभी तक सो रहे हैं, कुछ नगर की अट्टालिकाओं को देखकर और उनमें भरी सम्पदा का अनुमान लगाकर प्रसन्न हो रहे हैं। घुड़सवारों के घोड़े खड़े हैं। उनके सामने दाना घास डाला गया है जिसे वे आराम के साथ खा रहे हैं।

बाँध पर खड़े हुए सेनापति और जलपति ने देखा कि शहर से एक छोटा जुलूस निकला और अश्वारोहियों की ओर आगे बढ़ा। जलूस में सबसे आगे शहर के प्रबन्धक हैं। उनके पीछे कुछ लोग अपने सिर पर बक्स और पिटारे रखे चल रहे हैं, उनके पीछे कुछ गाड़ियाँ हैं जिन पर खाद्य सामग्री भरी जान पड़ती है। जलपति और सेनापति ने यह समझ लिया कि नगर के प्रबन्धक सोना देकर स्वतन्त्रता का लेनदेन करने जा रहे हैं।

नगर के प्रबन्धकों ने घुड़सवारों के दलपति के पास पहुंच कर सारी सामग्री भेंट की और हाथ जोड़कर विनती की कि आप यह सब ग्रहण करें और लौट जाएं।

घुड़सवारों के दलपति ने सामग्री ले ली। फिर कहा, हम सैनिक हैं, बड़े हैं, श्रेष्ठ हैं। यहाँ से लौट जाने के लिए नहीं आए हैं। हम उपहार ग्रहण करते हैं, रिश्वत नहीं।

नगर प्रबन्धकों में से एक बोला—लेकिन पिछली बार तो आपने रिश्वत ली थी और लौट गए थे।

सेनापति और जलपति ने देखा कि प्रबन्धक की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि घुड़सवारों के दलपति की छाती तन गई, उसका हाथ उपर उठा और हाथ में पकड़े हुए चाबुक के चमड़े ने प्रबन्धक के मुँह की खाल-सी खींच ली।

फिर दलपति ने तेज आवाज में आदेश दिया, उसके साथियों ने लपककर नगर के प्रबन्धकों और उनके साथियों को पकड़ लिया। उनके कीमती कपड़े उतार लिए, रस्सों से उनके हाथ पैर कस दिए और फिर उन्हें उन खूंटियों के साथ जकड़ कर बाँध दिया जिनसे घोड़े बन्धे थे।

सेनापति और जलपति ने देखा कि दलपति की आज्ञा से कितनी कतारें समुद्र की तूफानी तरंगों की तरह शहर की तरफ बढ़ीं।

खूंटियों से बांधे हुए नगर प्रबन्धक पहले ही हल्ले में कुचले गये। युद्ध का अभ्यास भूले हुए नगरवासी, बूढ़े, बच्चे, नौजवान, नर-नारी घोड़ों की टापों और सवारों की मार से आहत होकर गिरने लगे। सैकड़ों की संख्या में इधर-उधर भागने लगे। उनको करुण चीत्कार को भी घोड़ों की हिनहिनाहट और सवारों के विजयोल्लास ने दबा लिया। लम्बी साँस लेकर सेनापति ने कहा—बस भाई बस, अब नहीं देखा जाता—अपनी आँखों के सामने अपने शहर का यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता, आज्ञा दो।

वैसी ही लम्बी साँस लेकर जलपति ने कहा—इस भूमि की मिट्टी से हमारा शरीर बना, इस भूमि की वायु ने हमें प्राण दिये हैं, इस भूमि के जल से हमें जीवन मिला है—हमारा रोम-रोम इस भूमि का, इस नगर का, इसके चप्पे-चप्पे का कर्जदार है। आज वह कर्ज उतारने का समय आ गया है। तुम आओ—हम भी आते हैं।

सेनापति लपककर जलपति की छाती से लिपट गया। फिर तेजी के साथ बांध के नीचे उतर गया।

जलपति ने देखा—बांध से उतर कर सेनापति अपने उन मुट्ठीभर सैनिकों से मिला जो उसके परम विश्वासी आज्ञाकारी सेवक थे और बांध के नीचे सेनापति की आज्ञा के लिए खड़े थे। सेनापति ने उनसे ओजस्वी शब्दों में कहा—मेरे बहादुर साथियो! शत्रुओं ने हमारे शहर को अपने पैरों से रौंदना शुरू कर दिया है—हमारे छोटे बच्चे, कोमलांगी रमणियां, हमारे आदरणीय वृद्ध घास फूस की तरह रौंदे, कुचले और मारे जा रहे हैं। हम अपने प्राण देकर भी उनकी रक्षा नहीं कर सकते, सिपाही परिणाम पर विचार नहीं करता—शत्रुओं की अपार संख्या भी उसके हौसले पस्त नहीं कर सकती। आओ! बाज की तरह झपटें और सिंहकी तरह शत्रुओं पर टूट पड़ें।

जलपति ने देखा कि सेनापति अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ घुड़सवारों पर आंधी की तेजी के साथ टूट पड़ा। घुड़सवार कुछ चौंके, कुछ धाराशायी हो गए। परन्तु थोडी देर में सेनापति और उनके साथी वैसे ही बह गए जैसे समुद्र की तरंगें

तिनका बहा देती हैं। जलपति ने क्षण भर के लिए आँखें बन्द कर लीं फिर बाँध की उस दीवार की ओर बढ़ा जहाँ उसके कुछ विश्वस्त अनुचर काम कर रहे थे।

अनुचरों के पास पहुँचकर जलपति ने कहा—शाबास ! जल्दी करो।

एक अनुचर ने आगे बढ़कर उत्तर दिया—अब बस मिनटों की देर है, लेकिन आज आप बांध की दीवार क्यों तुड़वा रहे हैं ?

जलपति ने कहा—आज तक बांध की दीवार नदी के पानी से नगर की रक्षा करती थी। इसलिए हम इसकी मरम्मत करते थे। आज यह दीवार टूटकर नगर के मान-सम्मान की रक्षा करेगी, इसलिए हम इसे तोड़ रहे हैं। इस टूटी हुई दीवार में पानी जब भीतर घुसेगा, तो दीवार को और भी तोड़ देगा और फिर सारी नदी अपने तूफानी प्रवाह के साथ इस मैदान में फैल जाएगी और उन आततायियों—आक्रमणकारियों—घुड़सवारों को बहा ले जाएगी जो इस शहर को लूट रहे हैं—उसके निवासियों को मौत के घाट उतार रहे हैं।

अनुचर बोला—ओह ! लेकिन टूटी हुई दीवार से निकला हुआ पानी हमें भी तो बहा ले जाएगा—नगर के निवासियों को भी मिटा देगा।

जलपति ने दृढ़ स्वर में कहा—अवश्य। परन्तु नगर निवासी तो मिट चुके हैं और हमारे जिन्दा रहने की जरूरत ही क्या है ? हम क्या यह देखने के लिए जिंदा रहेंगे कि जिन लोगों ने इस शहर को लूटा है, इसके बच्चों को मारा है, इसके बूढ़ों की झुकी हुई कमरों पर घोड़े दौड़ा दिये हैं—वे सिंहासन पर बैठकर हमें हुक्म दें और हम हाथ बांधकर उनकी आज्ञाओं का पालन करें ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह बूढ़ा सैनिक इतनी बड़ी बेइज्जती कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। सिपाही की जिन्दगी भी शानदार होनी चाहिए और मौत भी। शानदार मौत आदमी को हजारों वर्ष तक जिन्दा रखती है—अमर कर देती है।

जलपति के आखिरी शब्द हवा में मिल भी न पाये थे कि बांध की दीवार टूटी, फिर भरभरा कर गिरी। जलपति और उसके अनुचर न जाने कहां चले गये—वर्षा की तूफानी नदी का बंधा हुआ पानी वेग के साथ शहर और मैदान में फैला, घोड़ों के पैर उखड़ गए। अपने सवारों के साथ-साथ वे भी न जाने कहाँ चले-चले गए। जो घुड़सवार अभी दूर थे वे सिर पर पैर रख कर ऐसे भागे कि पीछे लौटकर देखने की हिम्मत भी न कर सके।

दोपहर के बाद सूर्य का रथ जब सिंधु नदी के उस किनारे पर पहुंचा तब वहाँ घुड़सवार नहीं थे। नदी के पानी को रोकने वाला बांध नहीं था, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं वाला शहर भी न दीख पड़ता था। मीलों तक पानी ही पानी फैला था और उस पर सूर्य की किरणें चमक रही थीं।

समय बीता और नदी का पानी सिमट गया। कुछ टीले निकल आए। लोग उन टीलों को मोहनजोदड़ो, मृतकों के टीले से याद करते रहे। छह हजार वर्ष बाद उन टीलों की खुदाई हुई तो उनके नीचे विशाल भवनों की बुनियादें, बड़े बड़े जल विहारों के निशान और ऐसे चौड़े रास्ते निकले कि दुनिया के लोग आश्चर्य के साथ अपने दाँतों तले उंगली दबाकर रह गए। हो सकता है कि खुदाई से कहीं उस बांध के निशान भी मिल जाएं जिस पर खड़े होकर जलपति और सेनापति ने शहर की रक्षा के लिए पतंगे की तरह बलिदान हो जाने का संकल्प किया था और अपने उस संकल्प को पूरा करके दिखा भी दिया था। ●

शिशु संसार

—वृन्दावनलाल वर्मा

सच्ची कथा

महाबली छत्रसाल ...

लगभग तीन सौ वर्ष होने को आये—दौड़ता, हाँफता, अधेड़ अवस्था का एक मनुष्य गाँव में घुसते ही चिल्लाया—"मुगल फौज आ रही है ! मुगल फौज आ रही है!"

गली में घुसते ही थोड़ी दूरी पर एक बड़ा-सा घर था। था इकमंजला। आवाजें सुनते ही इस घर से निकल आया छरेरे शरीर का एक युवक और उसके पीछे-पीछे एक छोटा-सा बालक। पाँच-सात वर्ष का बालक। बालक की आँखें बड़ी-बड़ी, चेहरा आकर्षक, देह पुष्ट।

युवक ने पूछा—"किधर से आ रही है मुगल फौज ?

सूचना देने वाले ने दिशा बतलायी। फिर वह बोला—"छिपने का जतन जल्दी करना चाहिए, महाबली जी !"

छरेरे शरीर वाले का नाम महाबली था। देखने में वह पुष्ट-बलिष्ठ नहीं था। परन्तु जन्म के समय उसे यही नाम मिल गया था। तभी बालक चिल्लाया—"मारो मुगल फौज को !"

—"भैया, चुप ! चुप ! ऐसा मत कहो।"

बालक भौंहें सिकोड़ कर चुप हो, महाबली को ओर देखने लगा।

महाबली ने कहा—"पहाड़ी पर चढ़कर देखें। कितनी फौज है ? ऊँटों का तोपखाना भी साथ है या नहीं।"

बातें करने का समय नहीं था। महाबली ने सूचना देने वाले से प्रश्न किया—"कितनी दूर होगी मुगल फौज ?"

—"एक कोस से अधिक दूर नहीं होगी। घोड़ों की फौज है। पथरीले, ऊँचे-नीचे जंगली मार्ग के कारण रुक-रुक कर आ रही है।"

"एक महाराज चम्पतराय हैं, जो अपने घुड़सवारों को हवा में उड़ा ले जाते हैं! मैं पहाड़ी पर से देखकर आता हूं। तब तक तुम सब अपने-अपने बाल-बच्चों को लेकर छिपाव के ठौरों पर चले आओ।" महाबली ने कहा।

पहाड़ी बहुत ऊँची न थी। वह जल्दी ही वहाँ पहुँच गया। उसकी अनुभवी आँखों ने ताड़ लिया कि सेना कहाँ से आ रही है। वह सेना उसी के गाँव की ओर आ रही थी। जखौरा गाँव की ओर। जखौरा गाँव ऊँची-सी पहाड़ी के नीचे बसा हुआ था। महाबली पहाड़ी से उतर आया। सबसे पहले उसने उस बालक की रक्षा का प्रबन्ध किया।

वह बालक से बोला—"भैया, तुम भीतर की अँधेरी कोठरी में चले जाओ।"

"पिता जी ने यह तो नहीं कहा था। बन्दूक मेरी छोटी-सी है, पर गोली उसकी बड़ी है। सारी फौज पर ताक से चलाता रहूँगा। पौर वाले इस छेद से।"—बालक बोला।

महाबली के घर की पौर में एक छेद वाला ताक था। उस ताक के नीचे राख से भरी कुंडी, हथौड़ी, चिमटी इत्यादि औजार रखे थे। महाबली स्वर्णकार था। साथ ही योद्धा भी। उसने घर की अंधेरी कोठरी में बन्दूक, तलवार इत्यादि हथियार छिपा रखे थे। गाँव वाले भी उसका आदर करते थे।

बालक की बात सुनकर महाबली घबरा गया। उसने प्यार के साथ बालक से आग्रह किया। बालक अंधेरी कोठरी में न गया। वह आंगन के छायादार उसारे में रखी पीड़ी पर जा बैठा। महाबली ने कहा—"देखो भैया! तुम बन्दूक चलाओगे तो फौज वाले तुम्हें चाहे छोड़ दें, मेरे तो वे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।"

बालक ने तुरन्त आश्वासन दिया—"नहीं दादा, मैं बन्दूक नहीं चलाऊँगा। कंकड़ तक नहीं फेकूंगा।"

महाबली बाहर की ओर देखने लगा। उसे घोड़ों की टापों का शोर सुनायी पड़ा। वह द्वार के चबूतरे पर बैठकर कुछ सोचने लगा।

कुछ समय बाद मुगल सेना का एक छोटा-सा घुड़सवार दस्ता आ गया। दस्ते के नायक ने आते ही जोर के साथ पूछा—"तुम कौन हो ?"

—"जी, मैं गरीब सुनार हूं। मैं हूं और मेरा एक छोटा-सा लड़का।"

"कहाँ है ?" नायक ने पूछा।

—"भीतर है। बुला दूँ ?

—"अभी नहीं। गाँव वाले कहाँ गये ?"

—"डर के मारे भाग गए। यहीं कहीं जंगल में अपनी छाती पीट रहे होंगे।"

—"हम लूटमार करने नहीं आये हैं। हम जो कुछ पूछें, सच-सच बतलाना।"

—"जरूर हुजूर, जरूर !"

"यहाँ राजा चम्पतराय आये थे ?"

—"हाँ हुजूर, कल रात यहाँ से निकले थे। उनके साथ कुछ घुड़-सवार भी थे।

—"यहाँ कितनी देर ठहरे ?"

—"सो तो हुजूर, नहीं मालूम। उस रास्ते से गये, जो ललितपुर को गया है।"

उसी समय बालक वहाँ आ गया। नायक ने पूछा—"तुम्हारा बच्चा यही है ? क्या नाम है इसका ?"

बालक उत्तर देना चाहता था कि महाबली पहले ही बोल पड़ा—"उसका नाम हिम्मतबली है। मेरा नाम महाबली है, हुजूर।"

नायक ने देखा कि बालक कुछ कहना चाहता है। उसने बोलने का संकेत किया।

महाबली ने कहा—"हुजूर, यह बच्चा मेरी बहुत मदद करता है। खेतीपानी में रात के समय रखवाली करता है।"

"और मैं बन्दूक चलाना भी जानता हूं !" बालक से न रहा गया। नायक हँस पड़ा।

नायक ने महाबली को आदेश दिया—"ललितपुर का रास्ता दिखलाओ। यह भी बतलाओ कि कितनी दूर है ! वहाँ क्या-क्या है ?"

"हुजूर, ललितपुर यहाँ से सात-आठ कोस होगा। सज्जाद नाम की नदी के किनारे है। वहाँ एक पुरानी बावड़ी है। खाने-पीने का सब सामान मिलता है वहाँ।"—महाबली बोला।

"हुं" —बेपरवाही के साथ नायक ने कहा। फिर उसने मार्ग दिखलाने का संकेत किया।

महाबली ने बालक को घर के भीतर भेज दिया। सपाटे के साथ उस दस्ते को मार्ग दिखलाने के लिए चला गया। लौटने में देर नहीं लगी। उसे बालक की चिन्ता थी। भीतर जाकर उसने देखा। बालक अपनी छोटी-सी बन्दूक लिए बैठा है!

बालक हंसकर बोला—"दादा, आपने मेरा नाम हिम्मतबली कर दिया?"

—"तो क्या यह कह देता कि इनका नाम छत्रसाल है?"

"अरे नहीं, वह तो पिता जी—श्री महाराज रोक गये थे।" —बालक बोला।

दोनों बहुत प्रसन्न थे। कुछ घण्टों बाद गांव वाले अपने बाल-बच्चों सहित लौट आये। उनके मन में महाबली के लिए आदर और भी बढ़ गया। उसने राजा चम्पतराय के लड़के की रक्षा की थी। चम्पतराय अपने पुत्र छत्रसाल को महाबली के रक्षण में छोड़ गये थे। उन दिनों वे चम्बल की घाटियों में मुगलों को नाकों चने चबवा रहे थे। बेतवा, धसान के क्षेत्र में उन्होंने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध 'उत्पात' मचा रखा था। जखौरा ग्राम के आसपास से और गांव में होकर वह अनेक बार आये-गए थे। महाबली उनके सम्पर्क में आ गया था। अपने पुत्र छत्रसाल को वे इस विकट दौड़धूप में साथ न रख सके। उन्होंने पुत्र को महाबली के पास रख दिया। महाबली ने बहुत अच्छी तरह छत्रसाल का पालन-पोषण किया।

अवसर पाकर बाल्यावस्था वाले छत्रसाल जखौरा छोड़कर पन्ना की ओर चले आये। उन्होंने औरङ्गजेब के बाद नवाब मुहम्मद खां बंगश का सामना बरसों किया। अन्त में उनकी विजय हुई। वे मऊसहानिया नामक नगर में रहने लगे।

बरसों-बरसों लड़ते विजयी हुए थे। छत्रसाल को जखौरा जाने का अवकाश न मिल सका। महाबली वृद्ध हो गया था।

एक दिन उसने सुना—महाराज छत्रसाल एक युद्ध यात्रा में अकेले पड़ गये। घने जंगल में घोड़े से जा रहे थे। भूख लग आयी। खाने के लिए गांठ में एक दाना भी नहीं! जंगल से बाहर कुछ देर में हो पाए। देखा कि एक स्त्री अपनी थाली में बेर रखे बैठी है।

छत्रसाल घोड़े से उतर गये। उन्होंने कहा—"हमें भूख लग रही है। कुछ बेर दे दो, हम तुम्हें दाम देंगे।"

"कौन हो?" स्त्री ने पूछा।

—"महाराज छत्रसाल के सिपाही।"

—"खा लो जितने खाने हों, दाम नहीं लूंगी।"

—"क्यों ?"

—"महाराज छत्रसाल धरम के लिए लड़ते-लड़ते बूढ़े होने को हैं। मैं उनके सिपाही से बेरों का दाम लूं ? मैं ऐसी पापिन नहीं हूं।"

महाराज छत्रसाल पुलकित हो गये। बेर खाते-खाते स्त्री का नाम पूछा और उसके गांव का भी। इसके उपरान्त वे चले गये।

कुछ ही समय बाद महाराज छत्रसाल ने उस स्त्री के नाम एक ताम्र-पत्र भेजा। उसे और उसके परिवार को वह गांव जागीर में सदा के लिए दे दिया गया।

यह सब सुनकर महाबली रो पड़ा। उसने अपने घर वालों को अपना निश्चय सुनाया—"मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूं। परन्तु फिर भी चल फिर सकता हूँ। बैलगाड़ी से मऊसहानिया जाऊंगा। लल्ला हिम्मतबली को अवश्य देखूंगा।"

महाबली अपने कुछ परिवार वालों के साथ मऊसहानिया गया। महाराज छत्रसाल उस समय महल में थे। महाबली लाठी टेकता-टेकता वहां पहुंचा। पहरुओं को उसने अपने गांव का और अपना नाम बतलाया। लोगों ने सुन रखा था कि महाराज ने बचपन जखौरा ग्राम में बिताया है। वहां एक तपस्वी सुनार ने उनका लालन-पालन किया है।

महाबली ने उनसे कहा—"मैं श्री महाराज के दर्शन करने आया हूँ। महल की खिड़की से ही एक क्षण के लिए दर्शन दे दें।"

पहरुओं ने महाराज छत्रसाल को सूचना दी। वह तुरन्त सब काम छोड़कर नीचे आ गये। महाबली को उस आयु में भी उन्होंने पहचान लिया। वह उनके पैर छूने को हुआ परन्तु महाराज ने उसके हाथ पकड़ लिये। वे स्वयं उसके पैर छूने के लिए झुके। महाबली उनसे लिपट गया। सिसकते स्वर में उसने कहा—"श्री महाराज ! मेरे बहुत प्यारे लल्ला, हिम्मतबली ! मेरे मरने का समय आ रहा है...!"

उन्होंने तुरन्त टोका—"जो मांगोगे दादा, तुरन्त दूंगा।"

महाबली ने मांग की—"तो अपने नाम के पीछे महाबली और जोड़ने लगिए।"

महाराज छत्रसाल ने हंसकर, हर्ष के साथ स्वीकार किया। तब से वे अपने नामके पीछे महाबली लिखने लगे।

महाबली आनन्द में मतवाला-सा होकर अपने गांव जखौरा लौट आया।

महाराज छत्रसाल का एक स्मारक पन्ना में बना है। उसमें उनके नाम के उपरान्त 'महाबली' उत्कीर्ण है।

आइए हंसें

एक कंजूस रास्ते में जाते हुए सोच रहा था कि यदि मुझे राह में एक रुपया पड़ा हुआ मिल जाय तो चार आने का प्रसाद चढ़ाऊंगा। संयोग से उसे एक रुपया पड़ा हुआ मिल गया।

रुपये को लेकर वह सर्राफ की दुकान पर भुनाने गया। सर्राफ ने कहा—रुपया खोटा है, इसलिए बारह आने पैसे मिलेंगे।

कंजूस ने बारह आने पसे लेकर मन में कहा वाह रे ईश्वर ! तूने सोचा कि कंजूस तो है ही, पता नहीं प्रसाद चढ़ावे न चढ़ावे अतः पहले ही चार आने काट लिये। चलो ठीक है।

\+ + + +

मास्टर—रामू क्या बना रहे हो ?

रामू—जी मोटर।

मास्टर—(निकट पहुंच कर) कहाँ है ?

रामू—जब तक आप आए तब तक चली गई।

\+ + + +

जज—(स्त्री से) तुमने अपने पति को कुर्सी से क्यों मारा ?

अपराधी स्त्री—क्योंकि मैं मेज उठा नहीं सकती थी।

\+ + + +

एक बनिये का एक ग्राहक से झगड़ा हुआ। बनिये ने ग्राहक के एक थप्पड़ मार दिया। धीरे-धीरे झगड़ा कचहरी तक गया। जज ने थप्पड़ के अपराध में बनिये पर आठ आने जुर्माना किया। बनिए ने एक थप्पड़ जज के मार कर रुपया निकाल कर जज को दिया और कहा—'आधा-आधा बांट लो। कौन तुड़ाता फिरे।'

\+ + + +

मुन्नू ने शैतानी की थी और मास्टर साहब ने उसे छुट्टी हो जाने पर भी रोक रक्खा था। उसे एक बीस शब्दों का लेख लिखकर दिखाने पर ही छुट्टी मिल सकती थी। कुछ ही देर में उसने लेख लिख डाला और मास्टर जी ने उसे क्षमा कर दिया। उसने लिखा था।

'मेरा टामी भाग गया। मैं चिल्लाने लगा—टामी, टामो, टामी, टामी, टामी, टामी, टामी, टामी, टामी, टामी आ जाओ।'

\+ + + +

एक साहब अपने नौकर से—"जल्दी जा कर देखो, मेरा जूता शायद लेटने के कमरे में ही रह गया है। मुझे अभी बाहर जाना है।"

नौकर कुछ देर बाद आ कर—"जी, देख आया। आपका जूता वहीं पर है?"

\+ + + +

एक सज्जन अपने मित्र से—"भई, अत्यन्त दुःख की बात है कि मेरा कुत्ता खो गया। अब समझ में नहीं आता कि क्या करूँ?"

मित्र—"तुम्हें किसी दैनिक पत्र में विज्ञापन देना चाहिए।"

पहले सज्जन—"उससे क्या लाभ होगा? मेरा कुत्ता पढ़ थोड़े ही सकता है!"

\+ + + +

चोर—"वकील साहब, मैं आपका ऋण कभी न चुका सकूंगा। आप ही ने आज मुझे बचाया है। मैं आपके घर किसी दिन मिलने आऊंगा।"

वकील साहब (भयभीत होकर)—"भई, रात को न आना!"

\+ + + +

डाक्टर अपने मरीज से—"खूब आराम करना, जो चीजें तुम्हें परेशान करें, उनसे दूर रहना।"

मरीज—"बहुत अच्छा, आपका बिल आने पर मैं ऐसा ही करूंगा!"

\+ + + +

एक रिक्शावाला एक अंधेरी रात में खूब तेजी से रिक्शा भगाये जा था। उसके रिक्शे से एक सज्जन को धक्का लग गया। उन्होंने बिगड़कर कहा—"अबे, बत्ती जला कर क्यों नही चलता?"

रिक्शावाला—"सरकार, मैं तो बत्ती जला लूंगा, पर इस अंधेरे में आपको वह दीखेगी कैसे ?"

+ + + +

एक मूर्ख ने सूर्य को देखकर कहा—"यह सूर्य भी अजीब है। रात को जब अँधेरा रहना है, तब तो उगता नहीं, पर जब दिन में उजाला रहता है, तो यह निकल आता है।"

+ + + +

पानी पीने के एक औंधे गिलास को देखकर एक मूर्ख ने कहा—"वाह, यह अजीब गिलास है। इसका मुँह यों बन्द है।"

दूसरे ने कहा—"अरे हां, यह सचमुच अजीब है। इसमें पेंदी भी तो नहीं है।"

+ + + +

एक दिन इतिहास के एक शिक्षक औरङ्गजेब का और शिवाजी का पाठ पढ़ा रहे थे। पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने अरुण से पूछा—"अरुण, बताओ, शिवाजी ने औरङ्गजेब के दांत किस तरह खट्टे किये ?"

अरुण—"मुझे नहीं मालूम !"

शिक्षक (आश्चर्य से)—"ओह, तुमको नहीं मालूम ! अच्छा, हरि, तुम बताओ !"

हरि (अन्दाज लगाकर)—"शिवाजी औरङ्गजेब को अपने घर बुला ले गए होंगे और उन्हें खटाई खिलाई होगी। इसी से उनके दाँत खट्टे हो गए !"

ब्यावर के
श्री गोपालदास जी :

आपका पिछले दिनों देहावसान हो गया। आप कर्मठ और आदर्श नागरिक थे।

प्रभु परिवार को धैर्य और स्वर्गीय की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

—सम्पादक

भारतीय इतिहास का एक पृष्ठ

बालक और शिवाजी

अरे राष्ट्रघाती बालक ! तू किस पर करता वार,
हाथ पकड़ कर ताना जी ने छीन लिया तलवार।
शीश झुकाये खड़ा रहा वह बालक हिला-न-डोला,
तब तक वीर शिवा जी ने अलसायी आंखें खोला।

देखा खड़े महामन्त्री जी दिये भाल पर रोली,
कांप रहा सारा शरीर मुख से न फूटती बोली।
और उधर लज्जित हो बालक अपना शीश झुकाये,
खड़ा हुआ है नयनों में जलते अङ्गार छिपाए।

एक ओर है क्रोध दूसरी ओर छिपी है आशा,
समझ न पाए वीर शिवाजी है यह कौन तमाशा ?
भौचक्के से उठे, महामंत्री ने शीश झुकाया,
बालक ने भी अभिवादन में अपना हाथ उठाया।

कहा शिवा जी ने बालक से "तुम कैसे आए हो ?
किसका वध करने को यह तलवार यहाँ लाये हो ?
यह है मेरा 'शयन-कक्ष' क्या तुमने नहीं विचारा ?
बोलो बच्चे! सच-सच कहदो क्या है नाम तुम्हारा ?"

बालक बोला "मैं आया था दिल की आग बुझाने,
प्यासी थी तलवार, शिवा का शोणित उसे पिलाने।
मलयकेतु है नाम—पिता था मेरा वह सनानी,
जिसके बाणों से धरती में बह चलता था पानी।

तुम्हें मार कर महाराष्ट्र का झंडा मैं लहराता,
या तो इसी दुर्ग में हंसकर अपना शीश चढ़ाता।
किन्तु न पूरा हुआ यहाँ पर मेरा कुछ मंसूबा,
पूर्व जन्म का पाप मुझे बचपन में ही ले डूबा।"
कहा शिवा ने "महाराष्ट्र का मैं हूं भाग्य विधाता,
मेरे बल से ही केशरिया झंडा यह लहराता।
गौ-ब्राह्मण औ असहायों का मैंने त्राण किया है,
जाने कितने भिखमंगों को 'जीवन-दान' दिया है!"
'जीवनदान!' कड़क कर बोला बालक निर्भयस्वर से,
आशीर्वाद मिला है बोलो कब किसको पत्थर से?
तुम पत्थर हो पर दुनिया भगवान् तुम्हें कहती है,
समझ गया मैं भगवानों में दया नहीं रहती है।
मैं चन्द्रायण का लड़का हूं जिसने कर कुर्बानी,
शिवा! एक दिन पोंछा था तेरी आंखों का पानी।
पिता मर गये युद्ध-क्षेत्र में मैं रह गया अकेला,
मेरी विधवा माता ने जाने-क्या-क्या दुख झेला।
वीर पती की विधवा पत्नी पहने फटी लंगोटी—
आज मांगती है घर-घर में हाथ पसारे रोटी।
तुम्हें शर्म है नहीं देश की लाज बचाने वाले,
लज्जित है वीरत्व तुम्हारा वीर कहाने वाले!
मैं भूखा हूँ तीन दिनों से मिला न मुझको खाना,
मेरी हालत देख पड़ा था माँ को अश्रु बहाना।
तब यवनों ने कहा—'शिवा का शीश काटकर लाओ,
दस-सहस्र मुद्रा लेकर के तुम जीवन भर खाओ।'
इसीलिए मैं शीश काटने आया यहाँ तुम्हारा,
किन्तु यहाँ भी मेरे पीछे पड़ा भाग्य बेचारा।
मैं अपराधी हूं तुम पहले खाना मुझे खिलाओ,
इसके बाद स्वयं फांसी के तख्ते पर लटकाओ।
देख दृश्य यह वीर शिवा के बहा नैन से पानी,
हिचकी से फिर चन्द्रायण की फूटी याद पुरानी।
हाथ बढ़ाकर बालक को फिर छाती से लिपटाया,
नैनों के गंगा जल से उसका मस्तक नहलाया। ●

मुफ्त साहित्य प्रचारक मंगाएं। मासिक पुस्तकालयों को केवल ६० पैसे डाक व्यय लेकर वर्ष भर भेजा जाएगा। विज्ञापन का उत्तम साधन है।

नमूना मुफ्त मंगाएं।

पंडित जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम मार्ग, कारेली बाग, बड़ौदा

अपनी

आवश्यकताओं

वर-वधू

नौकरी आदि

के लिये

जनज्ञान

में

विज्ञापन दीजिए

———

धन भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। वी० पी० न मंगाएं।

—सम्पादक

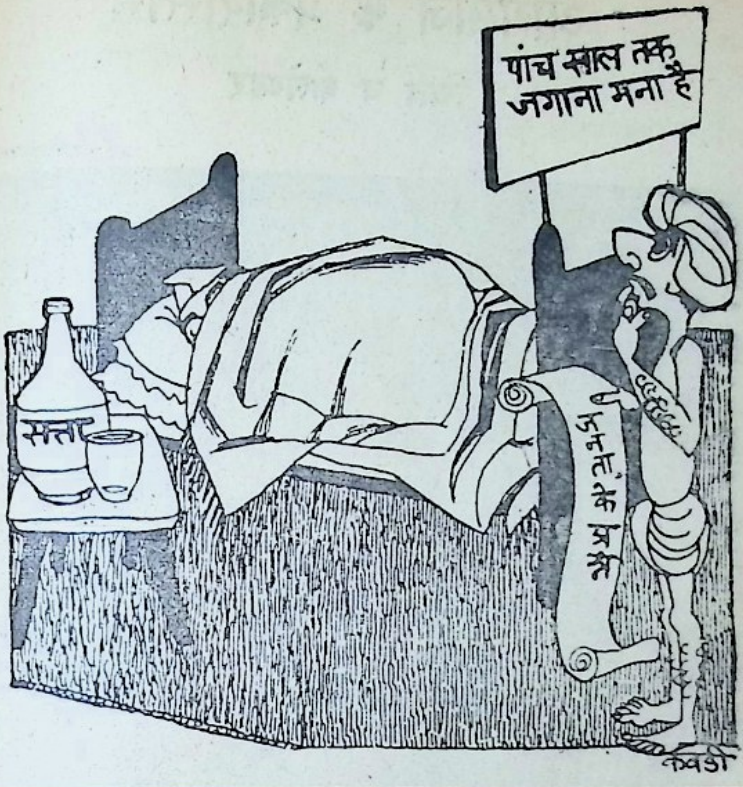

नेता महात्म्य • शैल चतुर्वेदी

सौदागर ईमान के

आंख बन्द कर साये चद्दर तान के,
हम ही हैं वा सेवक हिंदुस्तान के,
बहते-बहते पार लगे हैं हम चुनाव की बाढ़ में,
स्वतंत्रता को पकड़ रखा है हमने अपनी दाढ़ में,
हीरे औ माणिक हैं हम ही प्रजातन्त्र की खान के,
कोई कहता काम चाहिए, कोई कहता रोटी दो,
कोई नंगा खड़ा सामने कहता हमें लंगोटी दो,
सुनते-सुनते हाय हो गये बहरे दोनों कान के,
चार साल दिल्ली में काटें, बाकी जन सपर्क में,
सारी शक्ति लगा देते हैं अपनी पंचम वर्ष में,
गरज-गरज कर भाषण देते हम बालक तूफान के,
कब किससे मांगा हमने, देनेवाले दे जाते हैं,
दे कर बहती गंगा में, नैया अपनी खे जाते हैं,
रामराज के जादूगर, हम सौदागर ईमान के,

आर्यमाज के प्रकाशस्तंभ

चित्र व कैलेण्डर

इस चित्र को घर-घर में पहुंचाने का

व्रत लीजिए

दयानन्द-संस्थान, १५९७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

रियायती रेटों पर : आकर्षक चित्र

अनेक साइजों में

चित्र जो सामने के पृष्ठ पर छपा है।

घर-घर में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के महापुरुषों के चित्र पहुंचाने की दृष्टि से हमने यह चित्र

लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर देने का निश्चय किया है—

अब आप का कर्त्तव्य है कि अधिक से अधिक मंगाकर

इनका प्रचार करें—

१—२० × २० इन्च का अत्यन्त आकर्षक सुन्दर बढ़िया कागज पर चित्र जो सर्वत्र १॥) में बिक रहा है—बिल्कुल वही चित्र ५०) सैकड़ा

२—१० × १० इंच का यही चित्र—बढ़िया कागज पर—२५) सैकड़ा

३—१० × १० इंच का महर्षि दयानन्द का चित्र—२५) सैकड़ा

४—१५ × २२ इंच का १० नेताओं का चित्र दोनों ओर पत्ती लगा हुआ—२५) सैकड़ा

ध्यान रहे कि स्टाक थोड़ा है। दुबारा छपने पर इस मूल्य पर नहीं मिलेगा—

मंगाइये—और घर-घर में ऋषि चित्र पहुंचाइए—

—सम्पादक

लेखक :
वीर सावरकर

अनुवादक :
बनारसीसिंह एम० ए०

धारावाहिक उपन्यास

मोपला

इस अंक से हम क्रांति के सूत्रधार वीर श्रेष्ठ वि० दा० सावरकर की अमर कृति 'मोपला' उपन्यास को धारावाहिक रूप से प्रकाशित करना आरम्भ कर रहे हैं। बीते हुए काल की पृष्ठभूमि पर लिखी यह गाथा आज के संदर्भ में मार्गदर्शक है। गाथा होने पर भी यह बहुत कुछ सत्य है और इसके कुछ भाग तो श्री खुशहालचन्द खुर्सन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) द्वारा प्रत्यक्ष देखे वृतान्त है। आग की भीषणता से शांति का मार्ग हम खोज सकें। यही उपन्यास का लक्ष्य है। शेष सब निर्णय पाठकों पर।

—संपादक

भारतवर्ष के सुरम्य स्थानों, पावन प्रदेशों में मालावार की गणना की जाती है। हरे वृक्षों से आच्छादित सघन वन, नाना प्रकार के फलों और पुष्पों से ढकी पर्वत-मालाएं, स्वच्छ सलिल से आप्लावित मंजुल प्रपात, गहरी किन्तु शान्तस्वभावी सरिताएं, विपुल धान्य से भरे-पूरे खेत, ऊँचे और छत्र-से प्रतीत होने वाले वृक्ष पर लगे नारियल एवम् पोफली तथा ताड़ इत्यादि वृक्षों की पंक्तियों से परिपूर्ण यह प्रदेश नेत्रों और मन को पद-पद पर आल्हादित करता प्रतीत होता है।

ऐसे इस सुरम्य प्रदेश में, नाना प्रकार के फलों और पुष्पों से आच्छादित ऐसी ही पर्वतमालाओं के एक पर्वत-शिखर पर बसी थी कुट्टम् नामक एक छोटी-सी बस्ती। वहीं नारियल और पोफली के सघन वन में पाँच-छह नम्बूद्री ब्राह्मणों के घर थे। उन्हीं के समीप कुछ दूरी पर ही नायकों के पच्चीस के लगभग परिवार बसते थे और उनसे कुछ आगे थी अन्य 'स्पृश्यों' की थोड़ी-सी बस्ती। इसी बस्तीसे आधे मील की दूरी पर 'थिय्या' जाति के परिवारों की दस-बारह झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। मुख्य बस्ती से आधे मील की दूरी पर पड़ी ये झोंपड़ियाँ ही इस बस्ती की सीमा समझी

जाती थीं। यद्यपि ये भी इसी ग्राम का भाग थीं, किन्तु फिर भी उनके इतनी दूरी पर बसने का कारण यह था कि ये थिय्या लोग अस्पृश्यों में गिने जाते थे।

प्रतिदिन प्राची दिशा में भगवान् अंशुमाली के भी उदित होने से पूर्व ही नम्बूद्री ब्राह्मणों के कुमार उठकर वेदपाठ आरम्भ कर देते थे। उनके सुमधुर कंठों से उभरते पावन वेदमन्त्रों के स्वर को सुनकर पशु-पक्षी भी आनन्द-विभोर हो उठते थे। वहाँ के ब्राह्मणवृन्द ने वेदों का रक्षण इतनी उत्कृष्टता-सहित किया है कि स्नान और संध्या से विरत होकर शुभ्र एवम् शुद्ध यज्ञोपवीत धारण कर चारों ही वेदों का स्वर शुद्ध और भ्रमरहित तथा धाराप्रवाह पाठ करते हुए वे आज भी दृष्टिगोचर होते हैं।

परन्तु वेदों के पठन-पाठन का अधिकार शूद्रों को नहीं है, इसी धारणा के फल-स्वरूप ब्राह्मणों के मुख से उच्चारित वेदों की पावन ध्वनि अन्य जातियों को सुनाई न पड़ सके, इस बात को दृष्टिगत रखकर इन ब्राह्मणों ने अपनी बस्ती ग्राम की सीमा पर अन्य लोगों से दूर बसाई थी। उनके घरों के आगे कुछ दूरी पर नायर परिवार बसते थे। नायर अपने-आपको क्षत्रिय समझते हैं और किसी ब्राह्मण का कनिष्ठ पुत्र नायर कन्या से विवाह कर सकता था, किन्तु ब्राह्मणके ज्येष्ठ पुत्र के लिए ब्राह्मण कन्या को ही अपनी जीवन-संगिनी बनाना अनिवार्य था। इसका कारण यह था कि नायरों से अनुलोम पद्धति के अन्तर्गत सम्बन्ध स्थापित करना, उस जाति के साथ रक्तैक्य व बीजैक्य स्थापित करना वे अपनी उच्चता के अनुरूप मानते थे। उनका बीज, रक्त और जाति का अस्तित्व विशुद्ध रखने में विश्वास था। नायर भी थिय्या, नवाड़ी, यलावन, कलियन और मसकून इत्यादि जातियों को अस्पृश्य समझते थे अतः उनकी भी यह धारणा थी कि इस जाति के किसी व्यक्ति का दर्शन करना भी अनिष्टकारी है। इसी कारण इन जातियों के परिवार प्रत्येक ग्राम में ही मुख्य बस्ती से मील-आधा मील की दूरी पर बसे हुए थे।

इस सामाजिक रूढ़ि से विशृंखल सम्पूर्ण हिन्दू समाज के समान ही कुट्टम् ग्राम की यह बस्ती भी व्यवस्थित रीति से अलग-अलग बसी हुई थी।

प्रातःकाल की बेला थी। नारियल और पोफली के सुन्दर वन्य-प्रदेश में वेदशास्त्र-निरत ब्राह्मण सांगोपांग वेदपाठ करने में संलग्न थे। बीच-बीच में हवन यज्ञ से उठता हुआ सुगन्धित धूम्र, कालिदास के यक्ष का संदेश देने वाले स्निग्ध एवम् दयालु मेघों के तुल्य नारियल वृक्षों की शिखाओं के नीचे मण्डरा रहा था। बस्ती के मध्य में बसने वाले नायरों तथा अन्य जातियों के कुटुम्ब भी अपने-अपने कार्यों में संलग्न थे। उनमें से अनेक बस्ती के समीप स्थित सरोवर से पानी भरने के लिए जा रहे थे नायरों के परिवारों की महिलाएँ भी इस तालाब के मार्ग पर आ-जा रही थीं। उनमें से दस-पांच महिलाएँ क्षण-भर ठहरती और हँसते हुए एक-दूसरे से विदा ले रही थीं।

उसी समय इस स्थान से दूर खेतों के समीप थिय्यों की उस बस्ती में एक मुसलमान मौलवी एक खेत के किनारे खड़ा दो थिय्यों से वार्ता कर रहा था। खास मुहम्मद पैगम्बर के चाचा की मौसी के जंवाई की जो बहिन थी उस पड़ोसी की भानजी का बड़ा लड़का मेरा पूर्वज था। इस प्रकार मैं एक विशुद्ध अरब घराने को अलंकृत करता हूँ। अपनी लम्बी दाढ़ी पर तीन-तीन बार हाथ फेरकर वह सब लोगों को समझा रहा था। उन थिय्याओं में से एक ३० वर्ष का नवयुवक था। उससे

मौलवी ने कहा, "कंबु, तुम्हें पता है, दिव्य पुस्तक में क्या कहा गया है। सूरतुल फुर्कान नामक अध्याय में ईश्वर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "कुरान उसने प्रकट की है जो पृथ्वी और आकाश की सम्पूर्ण बातों को जानता है। पुनः जो इसे तथा पुनरुत्थान (कयामत के बाद पुनः रचना) की बात को गलत समझते हैं, उनके लिए मैंने भयंकर नरकाग्नि तयार करके रखी हुई है।" तब कम्बु ने नितान्त शान्त भाव से कहा, 'मौलवी, यह वाक्य तुमने मुझे अनेक बार सुनाया है। मैंने तुम्हारे समक्ष जो शंका प्रस्तुत की है उसका निवारण क्यो नहीं करते ? सभी मनुष्य एक न एक दिन मरते हैं और वे सभी कब्रों में पड़े हैं और जब कभी युगों के उपरान्त कयामत होगी तब परमात्मा एकदम तुरही फूँकेगा और वे उठ बैठेंगे, तथा उनके साथ न्याय किया जायगा, इसी को आप पुनरुत्थान कहते हैं ना ?" "अच्छा ठीक है, तब यह बताइए कि यदि किसी के द्वारा किए गए किसी कार्य का फैसला करने के लिए पुलिस उसे एक कोठरी में बन्द कर दे और दस वर्ष तक भी उसके मामले की सुनवाई न करे और उसे वहाँ बन्दी बनाए रखे तो क्या इस भयंकर कच्ची कैद देने वाले उस पुलिस-अधिकारी के इस कृत्य को अमानुषिक कहेंगे अथवा नहीं ?" "निश्चित" "अतः जब न्याय न करते हुए जांच के नाम पर ही किसी व्यक्ति को दस वर्ष तक कैद में रखना यह एक अमानुषिक कृत्य है ऐसी आपकी भी मान्यता है तो फिर अन्यायी अथवा न्यायी किसी भी व्यक्ति को अन्तिम निर्णय सुनाने के लिए संसार में अब कब्रों सरीखी भयंकर कोठरियों में डाल रखना, परमात्मा की अमानुषिकता भले ही न हो, परन्तु क्या उसकी दयालुता के विरुद्ध नहीं है ? और फिर इस प्रकार की बात पर जो व्यक्ति विश्वास नहीं कर पाता उसे नरकाग्नि में फेंक दे। छिः-छिः, परमेश्वर तो महान् दयालु है, कृपालु है, वह तो न्यायकारी भी है। आप जो कुछ बताते हैं उसमें तो परमात्मा के न्यायकारी होने की कल्पनामात्र भी नहीं है, उसमें तो नाम-मात्र को भी दया भावना नहीं है।"

"कम्बु !" मौलवी क्रुद्ध होकर बोला, "तुम काफिरों के कानों तथा हृदय पर तो परमेश्वर ने मोहर लगाई हुई है। तुम्हारी बुद्धि तथा हृदय को परमात्मा ने बधिर और वेदनाशून्य बनाकर रखा है। इसीलिए तुम पुनरुत्थान और पैगम्बर के वचनों पर विश्वास नहीं कर सकते।"

"और" कम्बु बीच में ही बोल उठा, "फिर हमें भयंकर नरकाग्नि में फेंक दिया जाएगा। यह परमेश्वर को शोभा देता है क्या ? पहले तो सर्वशक्तिमान् होकर भी उसने हमारे कान व हृदय बन्द कर दिये, और उस पर भी अज्ञान की मोहर ठोक दी। फिर हमारे लिए तुम्हारे कथन के अनुसार सत्य-वचन सुनाने हेतु तुम्हारे समान मौलवी भेज दिया और उसकी आज्ञा से हमारी मुक्ति नहीं होगी अपितु हमें दण्डित किया जायगा। जैसे पहले तो कोई हमारे हाथ में बलात् दूसरे की वस्तु रख दे और तदुपरान्त यह कहकर कि हमने चोरी की है, उसका यह कृत्य जिस भाँति अन्याय है उसी भांति जिस प्रकार के परमेश्वर की कल्पना तुम दे रहे हो उस पर विश्वास करना मात्र भी अन्याय और अधर्म ही कहा जायगा।"

"तोबा ! तोबा !" मौलवी बोल उटा, "परन्तु यह परमेश्वर द्वारा प्रकटित पुस्तक में लिखा हुआ है न ?"

कम्बु—"यदि आप ऐसा समझते हों तो आप सुखपूर्वक अपना यह विश्वास बनाए रखिए। मुझे तो अपने हिन्दू सन्तों के उपदेश ही अधिक आनन्ददायक लगते

हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि परमेश्वर इस बात से किसी व्यक्ति की साधुता अथवा भक्ति की परीक्षा नहीं करेगा कि पुनरुत्थान पर उसका विश्वास है अथवा नहीं अपितु वह इस आधार पर मानव की परीक्षा करता है कि "तूने सत्कर्म किए हैं, अथवा दुष्कृत्य किए हैं।" जिन्हें पुनरुत्थान की कल्पनामात्र भी नहीं है किन्तु जिन्होंने संसार में प्राणिमात्र पर दया की है; सत्य, समत्व, परहित तत्परता को जीवन में स्थान दिया है उनसे परमेश्वर सदैव ही सन्तुष्ट रहता है। हम हिन्दुओं में अनेक ऐसे साधु-सन्त जन्मे हैं, जिन्होंने मुसलमानी कुरान का कभी पन्ना भी नहीं पलटा किन्तु वे अपने पवित्र आचरण और भक्ति के आधार पर ही मुक्ति पाने में सफल हुए हैं।

"मुक्त हो गए!" मौलवी यह कहकर हँस पड़ा। "मूर्ख, वे सभी नरकाग्नि में जले हैं। परमेश्वर तथा पैगम्बर पर जिसका विश्वास है वही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

"क्या कहा? हम हिन्दुओं ने परमेश्वर पर दिश्वास किया और उसकी भक्ति भी पूर्ण मनोभाव सहित की, परन्तु जिस प्रकार तुम पैगम्बर मुहम्मद पर विश्वास करने को कहते हो उस प्रकार विश्वास न करें अथवा पुनरुत्थान और उपपत्ति को मान्यता न दें तो हमारी मुक्ति नहीं हो सकती?"

"अलबत्—अर्थात् नहीं!"

"फिर तो हमारे लिए परमेश्वर के समान ही पैगम्बर की भक्ति करना भी महत्त्वपूर्ण है। हमारे समान और पैगम्बर से पूर्व मनुष्य—"जाति की जो लाखों पीढ़ियाँ संसार में जन्मीं और उनके उपरान्त पैदा हुईं, इस संसार की सब पीढ़ियाँ नरक में गई हैं ना? हमारी हिन्दू-जाति के साधु-सन्तों को भी नरक ही मिला है ना?"

"बिलकुल। परमेश्वर की पुस्तक से तो यह बात स्पष्ट ही है।"

"फिर अच्छा है!" कम्बू ने चलते-चलते कहा, "मौलवी जी, जिस नरक में ऐसे साधु-सन्त रहते हैं, जहाँ मेरे पूर्वजों की पीढ़ियों-की-पीढ़ियां निवास कर रही हैं, वही मेरा स्वर्ग है! मैं हिन्दू ही रहूँगा। इस धर्म का परित्याग कर मैं स्वर्ग-प्राप्ति का इच्छुक नहीं हूँ। धर्मराज की कथा मेरी दादी मुझे आज भी सुनाती है कि उन्होंने अपने पाँच भाइयों को छोड़कर स्वर्ग में जाने के स्थान पर नरक में अपने जाति-बांधवों के साथ रहना ही श्रेयस्कर समझा और अपने धर्मबल से अपने भाइयों को मुक्त कराया। मैं उस धर्मराज के भक्तों का एक नितान्त ही कनिष्ठ भक्त हूँ। मैं उसी धर्मराज के तथा श्रीकृष्ण के पावन हिन्दू धर्म का अनुगामी रहूँगा!"

इतने में ही थिय्यों की बस्ती से जिसे अस्पृश्यों की अर्थात् महारवाड़ा भी कहा जा सकता है, एक प्रचण्ड चीत्कार सुनाई पड़ा, "कम्बु! कम्बु! अरे दौड़ो! तुम्हारा पुत्र मारा गया। वह दम तोड़ गया।"

इस चीत्कार को सुनते ही कम्बु एवं उसके साथ वहाँ खड़े हुए सभी थिय्या अपने महारवाड़े में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि कम्बु का एकमात्र पुत्र वटवृक्ष पर चढ़ते हुए उससे गिर पड़ा था। इससे उसे भयंकर चोट आई थी! उसके घावों से बहते हुए रक्त से उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा वस्त्रादि भीग गये थे। वह अचेत पड़ा था। किसी थिय्या को जितनी जानकारी थी, उसने उतना उपचार

भी किया था; किन्तु बालक के व्रणों से होता हुआ रक्तस्राव बन्द नहीं हो पाया था। उसी समय एक थिय्या बोला, "ग्राम के कृष्ण नायर के पास कोई दौड़कर जाए और उसे बुला लाए, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।" यह सुनते ही कम्बू और उसके समीप खड़ा हुआ एक अठारह वर्षीय किशोर दामू तीर के समान दौड़ पड़े। मौलवी भी उनका पीछा करता हुआ जिस मार्ग से उन्हें जाना था उस मार्ग में स्थित तालाब के पास जाकर खड़ा हो गया था। कम्बू और दामू दोनों ही बड़ी व्यग्रता सहित दौड़ते हुए उस तालाब से लगभग सौ डेढ़-सौ फुट की दूरी पर जा रहे थे। तभी तालाब पर पानी भरने वाले तथा खड़े हुए नर-नारी सहसा ही चीख पड़े—"थिय्या! थिय्या! दुर! दुर!"

मालाबार में स्पृश्य जातियाँ अस्पृश्यों को अपने से सौ-सौ डेढ़ सौ फुट दूर ही रहकर चलने देते हैं। स्पृश्यों की यह धारणा है कि यदि तालाब से १०० फुट की दूरी तक स्थित मार्ग पर किसी अस्पृश्य का पैर भी पड़ जायगा तो सम्पूर्ण तालाब का जल ही अशुद्ध हो जायगा। इन दोनों थिय्यों को तालाब के समीप से जाते हुए देख कर हुई इस गड़बड़ को देखकर मौलवी का हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा और उसने वहीं खड़े रहकर यह दृश्य देखने का निश्चय कर लिया।

दूर से ही उन थिय्यों ने कहा, "महाराज! हमारा एक लड़का भयंकर घाव लगने के कारण मरणासन्न है, हम कृष्ण नायर वैद्य के घर से उसके लिये औषधि लेने जा रहे हैं। दूसरा मार्ग यहाँ से दो-तीन मील की दूरी पर है अतः दया कीजिए, हमें इस मार्ग से जाने की अनुमति दीजिए।"

"चाण्डाल, मरे तुम्हारा बेटा" एक नायर हाथ हिलाते हुए दौड़ता हुआ आया और चीख उठा। उसने कहा, "क्या तुम्हें पता नहीं है कि जिस मार्ग से तुम जा रहे हो, यह सौ फुट दूर नहीं है। चाहते हो तो नापकर देख लो।"

"महाराज! तालाब के पास से यह स्थान जितना निकट है, उससे भी अधिक मेरा पुत्र मृत्यु मार्ग के निकट पहुँच चुका है। अतः कृपा कीजिये और मुझे औषधि लाने के लिए जाने दीजिए।"

"तुम्हारा पुत्र मरता है तो मरे" वह राम नायर बोल उठा, जिसे चोरी के आरोप में दो बार कारागार की सैर करनी पड़ी है। उसने कहा, "हमारा तालाब अशुद्ध हो गया तो? नहीं! तुमने पापयोनि में जन्म लिया है, तुम्हें तो देखना मात्र भी अशुभ है, किन्तु कलियुग है अतः मैं सहन कर रहा हूँ।"

"महाराज आपके मन में जो भी आए कह लीजिए, किन्तु दया कीजिए, मेरा यही एकमात्र पुत्र है। मुझे जाने दीजिए। मैं अपने मुख को ढंक लूंगा जिससे वह आपको दिखाई न देगा।"

"चुप!" वह मुकुन्द उत्तेजित होकर बोला जो पिछले पाँच वर्ष से कालिकट में शराब की दुकान चला रहा था। उसने चीख कर कहा, "तुझे दिखाई नहीं देता कि मैं स्नान कर रहा हूं? तू बड़ी ही ढिठाई दिखा रहा है कि हमारे बारम्बार मना करने पर भी आगे ही बढ़ता आ रहा है। क्या तुझे विदित नहीं है कि तेरे शब्द कानों में पड़ जाने मात्र से ही मेरे लिए पुनः स्नान करना अनिवार्य हो गया है। पता नहीं है क्या तुझे?

इतनी कहा-सुनी होते-होते वे दोनों थिय्या, जो पहले सौ-सवासौ फुट की दूरी पर खड़े थे और सरकते-सरकते अधिक निकट आ पहुंचे थे। लड़के के सिर से

निरन्तर रक्त प्रवाहित हो रहा था। उसके पिता को भी यह आभास हो रहा था कि उसका पुत्र प्रतिक्षण मृत्यु की ओर पग रख रहा है। जिस समय थिय्या तालाब से केवल ३० फुट की दूरी पर स्थित पगडंडी के समीप आ पहुंचे तो उस तालाब पर खड़े तथा उसमें स्नान कर रहे स्पृश्यों में भारी उत्तेजना व्याप्त हो गई और दो नायर, एक दो ब्राह्मण तथा सुनार भी उन पर पत्थर फेंकते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े। उसी समय शान्ति-सहित पुरुषसूक्त का उच्चारण करता हुआ एक ब्राह्मण वहाँ आया और उसने हाथ उठाते हुए कहा, हाँ। हाँ। ऐसी निरर्थक मारामारी आप लोगों को शोभा नहीं देती। सुना कम्बू! मैं तुम्हारे लिए उस वैद्य के पास चला जाता हूँ और उसके पास से औषधी ला दूंगा। यद्यपि मैं तुम्हारे पुत्र का कोई सम्बन्धी नहीं हूँ, फिर भी तुम्हें अपने पुत्र के सम्बन्ध में जितनी चिन्ता है, उतनी ही चिन्ता अपने हृदय में लिए मैं शीघ्रता सहित वैद्य के पास जाऊंगा और औषधि ला दूंगा। तुम यहीं खड़े रहो। इससे किसी की भावनाओं को भी आघात नहीं लगेगा और तुम्हारा कार्य भी हो जायगा।" अभी इस ब्राह्मण ने इतना कहा ही था कि वह मौलवी बीच में ही बोल उठा, "माफ करो। में बड़े आनन्द-सहित कम्बु को औषधि ला दूंगा। आप अपनी संध्या पूर्ण कीजिए। मेरे इस रास्ते से जाने में तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी ना? तभी शराब की दुकान चलाने वाला मुकुन्द बोल उठा "पर तेरी जाति क्या है? थिय्या लोक अस्पृश्य हैं और गन्दा काम करते हैं।"

मौलवी बोला, "मैं थिय्या हिन्दू नहीं, मैं तो मुसलमान हूँ।" "ओहो, तो आप तो खान साहेब हैं। भला आप पर किसे आपत्ति होगी। आप इस मार्ग से चाहे आएं अथवा जाएं, इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। ये थिय्या पाप योनि वाले हैं अतः इस तालाब से १०० फुट की दूरी से इनके आगे आने से तालाब भ्रष्ट हो जाता है?" चोरी करके दो बार कारावास भोगने वाला वह क्षत्रियकुलावतंस राम नायर अभी इधर ये बातें ही कह रहा था कि पुरुषसूक्त का उच्चारण करने वाला वह ब्राह्मण अपने भीगे वस्त्रों सहित हो दौड़ता हुआ चला गया था। वे थिय्या खड़े हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह कब कम्बु के पुत्र के लिए औषधि लेकर वापस लौटता है। अब वह मौलवी भी उन दोनों के समीप जा पहुंचा और बोला, "हाय-हाय, ये काफिर कितने निर्दय हैं। कम्बु, मुझे क्षमा करो। किन्तु मैं तुम्हारे हित की ही बात कह रहा हूं। वस्तुतः तूने मेरे समक्ष इस्लाम के विरुद्ध जो अपशब्द कहे थे उसी का तुझे यह तत्काल फल मिला है। तेरे पुत्र को इसी कारण अल्लाह मियाँ ने वृक्ष से नीचे गिरा दिया है। और जिन्हें तू अपने धर्मवाला समझता है उन काफिरों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के हृदय पर तो अल्लाह ने मुहर ठोक दी है। मैं मुसलमान हूं, मैं तो इस तालाब पर जा सकता हूँ, तू हिन्दू है किन्तु अस्पृश्य है; तू वहाँ नहीं जा सकता है। तू मुसलमान हो जा, फिर देख कि मैं तुझे इसी तालाब से लेकर जाता हूँ अथवा नहीं। फिर तू इस तालाब से पानी भी लेगा तो कोई न बोल सकेगा। तू मुसलमान हो। अब शीघ्र ही वह समय भी आने वाला है जब मुसलमान इन सभी काफिरों की स्त्रियों का पाणिग्रहण करेंगे। समझा? चल और तू मुसलमान होने का संकल्प ग्रहण कर। और इस आयत का —कुरान के मन्त्र का उच्चारण कर, जिसे मैं तुझे बताता हूँ। फिर तू देखेगा कि तेरा पुत्र भी तत्काल स्वस्थ हो जाएगा और साथ ही तुझे इन निर्दय ब्राह्मणों व स्पृश्यों से प्रतिशोध लेने का अवसर भी प्राप्त हो जायगा।"

अपनी ही चिन्ता में ग्रस्त वह थिय्या मौलवी के इस भाषण को सुनकर संतप्त हो उठा और बोला "मेरा पुत्र भले ही अच्छा न हो, भले ही उसकी मृत्यु हो जाए, किन्तु मैं मुसलमान नहीं बनूंगा। ब्राह्मणादि हिन्दुओं की इस निर्दयता का प्रतिशोध किस प्रकार लेना है, यह मेरे सोचने का विषय है, तुम्हारे विचारने का नहीं। और जो दयालु मनुष्य मेरे लिए प्रार्थना करता-करता गीले वस्त्रों सहित ही वैद्य के पास दौड़ता हुआ गया है वह भी तो ब्राह्मण ही है।

अब मौलवी निराशा और क्रोध से लाल-पीला हो उठा और बोला, "चाण्डाल ! काफिर ! 'सूरतुल बय्यन' इस अध्याय में परमेश्वर ने मूर्तिपूजकों के लिए जिस दण्ड के संबंध में कहा है वह दण्ड तुझे मिलेगा। तुम्हारे लिए नरकाग्नि में पड़ने की ही व्यवस्था है। जैसा कि तू कह रहा है, तेरा पुत्र मरेगा ही। नहीं, नहीं, तुम काफिरों के लिये तो ईश्वर ने ही यह व्यवस्था की हुई है। तब तक तुम कुरान की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करोगे जब तक कि तुम्हारी गर्दनों पर तलवार नहीं बरसेगी। ठहरो, वह दिन भी अब दूर नहीं रह गया है।" हाथों की मुट्ठियां बांधे मुक्का दिखाते हुए वह मौलवी उसे यह श्राप देता हुआ वहां से चल पड़ा।

इसी बीच औषधि लाने के लिए गया वह ब्राह्मण भी लौट आया। उसके साथ वह नायर वैद्य भी आ गया था। कम्बु थिय्या था, अस्पृश्य जाति में जन्मा था, किन्तु वह सुशिक्षित था और कालिकट से मलयालम भाषा का एक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित करता था। उसने हिन्दू-धर्म का मलयालम भाषा तथा अंग्रेजी ग्रन्थों द्वारा पर्याप्त अध्ययन भी किया था। इतना ही नहीं, वह संस्कृत ग्रन्थों का पाठ भी वे रोक-टोक ही नहीं करता था अपितु उनका अर्थ भी काफी हद तक समझ लेता था। भगवद्गीता का तो वह भली-भांति पाठ करने में समर्थ था।

संस्कृत भाषा को मातृभाषा के समान ही धाराप्रवाह बोलने वाले अनेकों ब्राह्मण कुटुम्ब आज भी मालाबार में हैं। किन्तु इतना ही नहीं, ऐसे अनेकों थिय्या आदि अस्पृश्य भी मालाबार में निवास करते हैं जिन्हें संस्कृत के सौ दो सौ श्लोक कंठस्थ हैं। पर इतना ही क्यों, वहां तो सर्व-साधारण में भी संस्कृत के अनेक श्लोक इतने अधिक प्रचलित हैं कि भर्तृहरि के कतिपय चुने हुए श्लोक अशिक्षित मुसलमानों तक को याद हैं। अस्पृश्यता की बात को छोड़कर कम्बू थिय्या की विद्वत्ता के तो स्पृश्य लोग भी कायल थे। वे भी उसकी विद्वत्ता का सम्मान करते थे। कृष्ण नायर वैद्य की दृष्टि में उसके लिए पर्याप्त सम्मान था। वह भी उसके साथ लगभग ५० फुट के अन्तर से चलता हुआ महारवाड़े पहुँचा और उसके पुत्र का यथोचित उपचार कर वापस लौट गया। जब कम्बू का पुत्र कुछ स्वस्थ हो गया तो कम्बू के साथ जो थिय्या तरुण उस मौलवी द्वारा किए गए संभाषण के समय उपस्थित था वह कम्बू से बोला, 'दादा ! मुझे क्षमा करो, वह मौलवी जो यह कह रहा था कि कुरान ईश्वर द्वारा प्रकट की गई पुस्तक है, मुझे लगता है सत्य ही है।" कम्बू हँसते हुए बोला, "तुमने यह कैसे समझ किया ?" तरुण बोला, "इसका कारण यह है कि वह मौलवी इस बात को बारम्बार बड़े विश्वास के साथ दोहरा रहा था।"

"तो फिर यदि किसी बात को एकाध बार जोरों से कह दिया जाए तो क्या वह सही हो जाती है ? तो फिर मैं यदि ऐसा कहूँ कि दो और तीन मिलकर सात होते हैं, और यह ज्ञान मुझ पर परमेश्वर ने प्रकट किया है तथा मैं सौ बार इसी वाक्य को दोहरा दूँ तो क्या तुम इसे सच मान लोगे ?"

'छिः-छिः, यह बात मेरे प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव को स्वीकार नहीं। मेरी बुद्धि ऐसा मानने की अनुमति नहीं देती।"

"किन्तु दामू, कुरान ईश्वर-प्रणीत है, यह मुझे नहीं लगता। मेरे समक्ष तू ऐसा कोई तर्क प्रस्तुत कर जिससे तेरे इस कथन की पुष्टि होती हो। अन्यथा बात ऐसी है कि जिन्हें कुरान ईश्वर-प्रणीत लगती है, वे खुशी से ऐसा मानें, किन्तु मेरी दृष्टि ने तो उसका अर्थ समाजनाशक निष्ठुर अथवा अविश्वसनीय है। किन्तु ऐसा समझने वाले मेरे सरीखे लोगों की गर्दन पर क्या तलवार रखी जायगी, उन्हें नरकाग्नि में दग्ध किया जाएगा और उनके हृदय को दग्ध करने का प्रयत्न होगा ?

"दादा, हम अस्पृश्यों पर जो हिन्दू धर्म इतना अन्याय करता है, क्या उसका अपमान करने वाले एवम् हिन्दुओं को काफिर समझने वाले मुसलमान हमसे अधिक पवित्र हैं। वे गोवध करते हैं और देवमूर्तियों को पत्थर के टुकड़े समझने वाले ये मुसलमान उनके तालाबों पर भी जा सकते, परन्तु राम-कृष्ण की पूजा करने वाले हम, जो उनके हिन्दू बन्धु-बान्धव हैं, उन्हें वे पापयोनि वाला समझते हैं और हम उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। जिस हिन्दू धर्म में इस भयंकर अन्याय की गणना भी पुण्य के रूप में की जाती हो, उस हिन्दू धर्म की अपेक्षा अस्पृश्य जाति की कल्पनामात्र भी न करने वाला एवम् सभी मनुष्यों को समान समझने वाला मुसलमानी धर्म श्रेष्ठ नहीं है क्या ?"

बड़े लाड़ सहित उस तरुण की पीठ पर हाथ रखते हुए कम्बु बोला, "पगले, देख शब्दों का अन्तर होने से ही विचारों में भी कितना घोटाला हो जाता है। तू कहता है कि हमसे हिन्दू धर्म अन्याय करता है, पर हम अस्पृश्यों पर जो निर्दयता सहित अत्याचार होता है, वह हिन्दू धर्म नहीं करता अपितु यह अत्याचार हिन्दू समाज द्वारा किया जाता है। किन्तु थोड़ा सा विचार करें तो यह बात भी भूल ही प्रतीत होती है। कारण हम अस्पृश्य भी तो हिन्दू समाज के ही अन्तर्गत हैं। अतः यह कहना ही उचित होगा कि अपने-आपको स्पृश्य समझने वाले कतिपय व्यक्ति हम अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों पर कई दृष्टियों से अत्याचार करते हैं, ऐसा कहना ही न्यायसंगत होगा। और एक क्षण के लिए इस बात पर विचार कर कि हिन्दू समाज में अस्पृश्यता का यह पाप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही नहीं करते अपितु हम थिय्या भी तो इस पाप में भागीदार होने से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकते। जब नायर हम से यह कहते हैं कि छुओ मत तो हम महारों को इतना क्रोध आता है—यह है भी उचित। किन्तु महार थिय्या भी तो वादकों को अपनी पंक्ति व समाज में मिलाना अनिष्टकारक मानते हैं। वे भी तो उन्हें पास से नहीं गुजरने देते और उन्हें जब हम अपने से अलग करते हैं तो उन्हें भी तो बुरा ही लगता होगा। अतः इस पाप का प्रक्षालन तो हम सब हिन्दुओं को मिलकर ही करना होगा। और उस पाप के प्रक्षालन का मार्ग मुसलमान हो जाना है क्या ? तेरी बुद्धि यह स्वीकार करती है ? एक बार नहीं हज़ार बार यह बात कही जा सकती है कि छुआछूत ने ही हिन्दुओं में अस्पृश्यता का प्रसार किया है, किन्तु जिसे मुसलमान ईश्वरीय आज्ञा समझते हैं, क्या वह भयंकर अस्पृश्यता नहीं है ? कारण यह है कि २० करोड़ मुसलमानों को छोड़कर जो अवशिष्ट सैकड़ों कोटि लोग इस धरती पर हैं, मुसलमानी मत के अनुसार क्या वे अस्पृश्यों से भी अधिक अस्पृश्य नहीं है ? उनका उद्धार नहीं हो सकता, उनकी मुक्ति का कोई मार्ग नहीं। उनके हज़ारों पूर्वज साधु, सन्त, सभी

नरक में गये हैं व जाएंगे। पैगम्बर की पुस्तक पर विश्वास न करने वालों को परमात्मा भी स्पर्श नहीं करता, ऐसा कुरान का वाक्य बताया जाता है! इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर भी उनके मतानुसार स्पृश्य और अस्पृश्य का विचार रखता है। हम हिन्दू अस्पृश्यों को तो अपने पुनीत आचरण द्वारा पुनः जन्म ग्रहण करने पर स्पृश्य होने की आशा है, परन्तु मुसलमान मत के अनुसार तो जो अस्पृश्य हैं और जिनकी संख्या सैकड़ों करोड़ है, उनका पुनर्जन्म ही नहीं होगा। वे नरक में ही गलेंगे, सड़ेंगे, उनकी ओर ईश्वर भी दृष्टिपात नहीं करेगा। केवल जो मुसलमान हैं वे ही स्वर्ग के अधिकारी हैं। शेष सारा संसार—तुम्हारे रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, पांडुरंग, भक्त पुंडलीक सहित—नरक में पड़ा सड़ रहा है। अस्पृश्यता त्याज्य है, परन्तु मुसलमानों की इस भयंकर अस्पृश्यता की तुलना में क्या हिन्दुओं में विद्यमान अस्पृश्यता वरदान ही नहीं है? साथ ही साथ इस बात पर भी ध्यान देना अभीष्ट है कि अस्पृश्यता को दूर करने के लिए हम सब को मिलकर ही इस रूढ़ि को तोड़ना होगा। क्या इस कार्य के लिए तुम हिन्दू धर्म का ही परित्याग कर देने की निन्दनीय कल्पना करते हो? अस्पृश्यता का अर्थ सांगोपांग हिन्दू धर्म नहीं है। घर में एक चूहे ने बिल बना लिया है, सांप भी उसमें आ सकता है, अतः तुम्हें उस बिल को बन्द करना होगा। किन्तु क्या उस एक बिल के कारण ही तुम अपनी थिय्या जाति के अनेक पूर्वजों के भी पूर्वजों की दृष्टि में पवित्र और प्रिय इस हिन्दू धर्म के मन्दिर को छोड़ कर दर-दर भटकना पसन्द करोगे? मैं समझता हूँ कि ऐसा करने का कोई कारण नहीं है।

थिय्या लोग अन्यों की दृष्टि में अंत्यज हैं, किन्तु फिर भी उन्हें अपनी जाति का, रीति-रिवाजों का और कर्म का प्रखर अभिमान है। उनके पूर्वजों की कोई निन्दा करे, यह उन्हें तनिक भी नहीं सुहाता। उनके इसी प्रखर पूर्वजाभिमान और जाति-प्रेम ने उन्हें आज तक भी ईसाइयों और मुसलमानों के जाल में पूरी तरह नहीं फँसने दिया है। उनमें अनेक साधु-सन्त हुए हैं। आज भी उनमें अनेक बैरिस्टर, वकील, डाक्टर तथा पत्रकार हैं। तथापि उनमें से अनेकों उतावले तरुणों को अपने हिन्दू समाज की अस्पृश्यता के अन्याय और घातक रूढ़ि ने अपने धर्म से बलात् धक्का देकर दूसरे धर्मों में धकेल दिया है। थिय्या जाति के विधर्मी बने तरुणों को इस गलत मार्ग से पुनः सही मार्ग पर लाने के लिए जिन थिय्या नेताओं ने प्रयत्न आरम्भ किया था कम्बु उनमें अग्रगण्य हैं। ऐसे इस हिन्दू धर्माभिमानी महार बन्धु का तालाब पर स्पृश्य लोगों द्वारा इतना अपमान किए जाने पर भी उसकी हिन्दू जाति के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा देखकर वह तरुण भी प्रभावित हुआ और उसने कम्बु के चरणों का स्पर्श करते हुए कहा, 'मैं अब अपना सम्पूर्ण जीवन ही हिन्दू जाति में प्रचलित अस्पृश्यता सरीखी रूढ़ियों को समाप्त करने में लगा दूँगा। जिस प्रकार भी आप कहेंगे, उसी प्रकार मैं हिन्दू जाति की सेवा करने के लिए सिद्ध हूँ।" कम्बु "बोला, आज हिन्दू धर्म की सेवा और संरक्षण के लिए जितने स्वयंसेवकों व स्वेच्छा से सैनिक बनने वालों की आवश्यकता है, उतनी इससे पूर्व कभी भी नहीं थी। मेरी ऐसी आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा है कि आज तक हिन्दू धर्म का संरक्षण जितनी प्रमुखता से ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने किया है, वैसे ही अब हम थिय्यों को करना होगा। हिन्दू धर्म के लिए धर्मवीरत्व को प्रदर्शित करते हुए स्पृश्यों के स्थान पर हम अस्पृश्यों को, ब्राह्मणों की जगह हम महारों को अधिक शौर्य का प्रदर्शन कर दिग्दिगन्त में उसका जयजयकार गुँजाना होगा, यही मेरी महत्त्वाकांक्षा है। चल,

अपने मालाबार के हिन्दुओं पर जो भयंकर संकट शीघ्र ही आने वाला है, जिसकी कल्पना इन वेदों के घोष में निमग्न ब्राह्मणों को किंचित् मात्र भी नहीं हो पाई है, उस संकट का निराकरण करने के लिए मेरे साथ चल।" ●●

२

उस तरुण को साथ लेकर कम्बु अपने महारवाड़े से मिलकर ग्राम की पगडंडी पर चढ़ता-चढ़ता नारियल और पोफली के वृक्षों के वन में जा खड़ा हुआ। वे उस वन में आकर चुपचुप खड़े हो गए, जिससे कि किसी ब्राह्मण की दृष्टि उन पर न पड़ने पाए। क्योंकि यदि वह जोर से बोलता तो स्नान-संध्या निरत ब्राह्मणों का अनिष्ट हो जाता। इसलिए वह अपने हाथ के इंगित से दामू को अपने साथ आने का निर्देश देता रहा और वे दोनों एक वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए।

इधर ब्राह्मणों के घरों में होने वाला प्रातःकालीन वेदघोष भी संपन्न हो चुका था। हरिहर शास्त्री के द्वार ले निकल कर उनकी पन्द्रह वर्षीय कन्या और लगभग १८ वर्ष का पुत्र नारियल के एक उद्यान में जहाँ विभिन्न रंगों के पुष्प भी लगे हुए थे पुष्प-चयन के लिए आ पहुंचे। पुष्प-चयन के साथ ही साथ यह बालक और बालिका संस्कृत श्लोक बोलते जाते थे और श्लोक के अन्तिम अक्षर को लेकर दूसरा उससे आरम्भ होने वाले श्लोक का उच्चारण करता था। इस प्रकार बीच बीच में उनका सुमधुर हास्य भी गूंज उठता था। हरिहर शास्त्री यद्यपि नम्बूद्री ब्राह्मण थे फिर वे जब से एक बार मद्रास-पर्यन्त हो आए थे तब से उनके मन को इस सम्बन्ध में कोई शंका नहीं रह गई थी कि इस जगत् में आगगाड़ी और तारयंत्र जैसे पदार्थ भी हैं। किन्तु इतना ही नहीं, वे उन ब्राह्मणों की शंका का भी समाधान करते थे जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयु नारियल और पोफली के वृक्षों से आच्छादित वनों में ही व्यतीत कर दी थी और जिन्हें इस संबन्ध में कोई जानकारी ही नहीं थी कि यज्ञशाला के बाहर भी अग्नि कोई अन्य रूप धारण कर लेती है। जब हरिहर शास्त्री इन ब्राह्मणों से आगगाड़ी अथवा तारयन्त्र आदि की चर्चा करते थे तो उन्हें विश्वास न हो पाता था। उस समय हरिहर शास्त्री उनकी शंका का समाधान करने के लिए वेदों में से भी आगगाड़ी और तारयंत्रों का उल्लेख खोज निकालते थे। हरिहर शास्त्री उद्भट विद्वान् थे। अब तो मद्रास पर्यन्त की उनकी यात्रा ने उनकी विद्वत्ता पर और भी धार चढ़ा दी थी। उन्हें विद्यमान सामाजिक और राष्ट्रीय स्थिति की कल्पना थी और वे समाज में व्याप्त बुराइयों के उन्मूलन के संबन्ध में भी विचार करते थे। उनके घर में काम करने वाले नौकर पर्यन्त थोड़ी बहुत संस्कृत समझ लेते थे। वे अपने घर के आंगन में खड़े हुए बाग में फूल तोड़ते हुए अपने दोनों बालकों की लीला का अवलोकन कर रहे थे। इधर उनकी पुत्री अपने भाई से खेल खेल में रुष्ट होती हुई कहने लगी। "भाऊ! अब मैं तुम्हारे साथ नहीं खेलूंगी। यह श्लोक तुमने नियम से बाहर कहा है। पंच महाकाव्यों में से किसी का भी यह श्लोक नहीं है और पंच महाकाव्यों में से ही श्लोक बोलने की तुम्हारी प्रतिज्ञा थी।"

'परन्तु सुमति! यह श्लोक तो रघुवंश का है।'

'कदापि नहीं—' 'चलो! तुम से मेरी शर्त रही!' 'हाँ-हाँ चल शर्त ही सही—बाबा से ही निर्णय कराए लेते हैं।' 'कहिए न बाबा' उसका भाई बोला, 'बाबा!

सीते दुस्सहनं वनम् !' क्या यह श्लोक कालिदास का नहीं है ?' 'नहीं बाल', शास्त्री ने कहा। किन्तु यह कहाँ का है, यदि सुमति ने यह बता दिया तो मैं समझूंगा कि वह जीत गई है !' 'हाँ-हां यह रामायण का श्लोक है,' सुमति तत्काल बोल उठी। 'यह सही है' तथापि रामायण के कतिपय अनुष्टुप् भी कालिदास के अनुष्टुपों से इतने अधिक मिलते हैं कि जितने गीता के उपनिषद् से। अतः यदि बाल से भूल हो गई है तो इसमें सुमति,तुम्हारे लिए दोष देने का कोई अवसर नहीं है।' सुमति कुछ क्रुद्ध-सी होती हुई बोली,'छोड़िए, इससे कुछ नहीं होता।' उसी समय उसके पैरों से थोड़ी सी ही दूरी पर बड़ी तेजी से एक सर्प दौड़ता हुआ दिखाई दिया। शास्त्री किंचित् मात्र भी न चौंकते हुए बोले 'सुमते ! देख तो मेरा फणीन्द्र तेरे चरणों में क्या विनती करने आया है। आज प्रातःकाल फूल तोड़ते समय तूने उसे वह गीत नहीं सुनाया जो तू प्रतिदिन गाती थी। यही कहने के लिए यह आया है। उसे सुना दे वह गीत।'

उस सांप को 'फणीन्द्र-फणीन्द्र' कहते हुए ये दोनों ही बालक उसके साथ खेलने लगे। वे कभी चुटकी बजाकर उसे बुलाते थे तो कभी पुचकार कर आगे आने का इशारा करते थे। उनके खेलते ही खेलते वहाँ दो तीन सर्प और भी आ गए। वे भी अपने बिलों से निकल कर उनके साथ खेलने लग गए। यहाँ जिस प्रकार आप लोग अपने घरों में कुत्ते और बिल्लियाँ पालते हैं, उसी प्रकार मालाबार में सभी जातियों के लोग घरों के आंगन में सर्पों को निवास करने देते हैं। जिस प्रकार कभी आपके मन में यह कल्पना भी नहीं आ पाती कि कुत्ता भी प्राणघातक सिद्ध हो सकता है, इसी भांति यहाँ के निवासी सर्पों से किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं होते। किन्तु ऐसी बात भी नहीं है कि सर्प कभी किसी पर वार ही नहीं करता हो ! तथापि मालाबार में सर्प की हत्या करना सामान्यतः क्रूरता समझी जाती है। अतः अनेक स्थानों पर पालतू पशुओं के समान ही सर्प भी गृह आंगन से चौखटों तक चौखटों से गृह आंगन तक में विचरण करते हुए दृष्टिगोचर हो जाते हैं। हरिहर शास्त्री को अपने उद्यान में विचरण करने वाले सर्पों से केवल धार्मिक दयाभावना अथवा सामाजिक रूढ़ि मात्र के कारण प्रेम नहीं था, अपितु सर्पों के प्रति उनके मन में विद्यमान वात्सल्य भावना का एक विशेष कारण भी था। कारण यह था कि जिस सर्प ने उसकी कन्या के पैरों के समीप आकर बड़े लाड़ सहित कुण्डली मारी थी उस सर्प का अपनी सन्तान के तुल्य ही पालन करने का निर्देश उन्हें उनके पिता ने ही देह-त्याग करते समय दिया था। हरिहर शास्त्री के वृद्ध पिता एक दिन वनांचल से गुजर रहे थे और वर्षा की रिमझिम फुहारें पड़ रही थीं। उन्होंने अपने सिर पर वर्षा से भीगने से बचने के लिए ताड़पत्रों की बनी एक छत्री लगाई हुई थी। वर्षा के कारण शीत बढ़ रहा था और वन्य पशु भी इस ठण्ढ से बचने के लिए यत्र-तत्र शरण लेने का स्थान खोज रहे थे। ऐसे समय ही जब वह वृद्ध एक नागफनी के वृक्ष के समीप से होकर गुजरा तो उस वृद्ध ब्राह्मण की छत्री में एक नाग का बच्चा आ गिरा। वह उसकी छत्री के डण्डे में लटक गया और वृद्ध ब्राह्मण उसे अपने घर ले आया और दयालु हृदय वाले इस ब्राह्मण ने उसे एक गर्म कपड़े में लपेट दिया। धीरे-धीरे उन्होंने अपने बाग में ही उस सर्प के लिए रहने की एक सुन्दर बाँबी भी बना दी ! वह नाग का बच्चा धीरे-धीरे बढ़ता रहा और एक नितान्त भयंकर सर्प का रूप धारण कर गया। यद्यपि वह सर्प दूसरों को देखने में बड़ा ही भयंकर प्रतीत होता था किन्तु वृद्ध ब्राह्मण की वस्तुओं पर और उसके हाथों पर बालकों के समान खेलता रहता था।

उसी पुष्पवाटिका में रहने वाली सर्पिणियों के सम्पर्क में आने के कारण उसकी संतति भी बढ़ती जा रही थी। ये सभी सर्प बड़ी ही स्वच्छन्दता सहित उपवन में विचरण करते थे और उसके समीप ही स्थित अनाज के भण्डार पर रात्रि में पहरा भी देते थे।

एक दिन रात्रि में कुछ चोर शास्त्री के घर में धन और धान्य चुराने के लिए आये जब वे द्वार से भीतर प्रवेश करने लगे तो उस भयंकर नाग ने अपनी तीव्र फुंकारें मारनी आरम्भ कर दीं और अपने विशाल फन को उठाकर वह उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उसके सामने आ जाने के कारण चोर कुछ भयभीत हो गये और अभी उन्होंने सर्प को मार्ग से हटाने के लिए शस्त्र उठाया ही था कि आस-पास घूमने वाले सभी सर्पों की भयंकर फुकारें गूंज उठीं और उन्होंने अपने फणों से चोरों पर प्रहार भी किये। चोर अन्धकार में भाग निकले। अभी वह शास्त्री के द्वार से तीस-चालीस फुट की दूरी पर ही जा पाये होंगे कि सर्पदंश के कारण शरीर में फैले विष से मूर्छित होकर गिर पड़े। प्रातःकाल वृद्ध शास्त्री उठे तो उन्होंने देखा कि एक चोर चोरी के माल की गठरी पर ही मरा हुआ पड़ा है। कोई भयंकर विष की वेदना के कारण मरणासन्न हो गया है। किन्तु किसी कर्त्तव्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी के समान वह नाग उन सब चोरों पर पहरा दे रहा था। शास्त्री महोदय ने बड़ी कौतूहलपूर्ण दृष्टि से यह दृश्य देखा। उनके मन में दया की भावना उमड़ पड़ी और उन्होंने समझा कि चोरी के आरोप में प्राण दण्ड अत्यधिक है अतः सर्पदंश का वह रामबाण उपाय किया, जिसकी जानकारी मालाबार में अनेक लोगों को है। उस रामबाण उपाय द्वारा उन्होंने चोरों को पुनः चैतन्य प्रदान किया और छोड़ दिया। उसी दिन ग्राम में यह किंवदन्ती फैल गयी कि वह नाग शास्त्री महोदय का ही कोई पूर्वज है और उसने उस घर पर पहरा देने के लिए ही जन्म ग्रहण किया है। इस ख्याति के साथ ही साथ एक विशेष बात यह भी थी कि इस नाग को अपनी शैशव अवस्था से ही इस सुन्दर कुमारी से प्रेम था। सर्पों के प्रेम में फंसी कुमारी के जीवन के लिए खतरा होता है ऐसा भी कभी-कभी होता है। परन्तु इस नाग का इस कुमारी से प्रेम ऐसा नहीं था। वह सर्प तो एक चंचल स्नेहीजन के समान उस कन्या के आस-पास घूमता था, उसी के हाथ से दिया गया दूध पीता था, उससे गीत सुनता था और दिन में कम से कम एक बार जब यह कन्या अपने कोमल हाथों से उसे सहला देती थी तो वह दिन भर स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करता था। किसी-किसी दिन उसके स्पर्शमात्र से ही इस नाग को सन्तोष नहीं हो पाता था और वह उसके मुख पर टक लगाने की उच्छृंखल इच्छा से भी विह्वल हो उठता था और यदि वह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती थी तो वह दूध भी नहीं पीता था। और अन्ततः जब सुमति अपना हाथ उसकी ओर कर देती थी और और अपने सुकोमल हाथ से एक नागिन के समान उसे दुलराती और सहलाती थी तथा उसके नेत्रों को अपनी कुन्दन वदन चन्द्रिका का रसपान करने देती थी, तभी वह नाग दूध पीता था। हरिहर शास्त्री को भी यह दृश्य देखकर आनन्दानुभूति होती थी। इस प्रकार हरिहर शास्त्री और सुमति ही क्या, घर के सभी लोग उस नाग को अपने पारिवारिक जन के तुल्य ही स्नेह करते थे।

उस सर्प के साथ खेलते खेलते ही सुमति की दृष्टि सामने की ओर गई तो उसे ऐसा लगा कि दूर खड़ा कोई हाथ के इशारे से बुला रहा है। वह बोल उठी, "बाबा! देखो तो वह कौन है! आप यहाँ खड़े हैं, यह उसे पता है, किन्तु वह वहीं क्यों खड़ा हुआ है?" हरिहर शास्त्री ने उस ओर दृष्टिपात किया और बोले "वह थिय्यों का

नेता कम्बु है।" सुमति कई बार अपने पिता के मुख से कम्बु की प्रशंसा सुन चुकी थी, अतः बोली, 'बाबा' ऐसे विद्वान् मनुष्य को यहीं क्यों नहीं बुला लेते ?' शास्त्री बोले, 'अरे ! यदि मैंने थिय्या को यहाँ बुला लिया तो कल ये सारे ब्राह्मण मुझे ही यहाँ से निकाल कर बाहर कर देंगे, अतः मैं ही उसके पास चला जाता हूँ।'

सुमति तत्काल हँसती हुई बोल उठी,'बाबा, क्या यह अच्छी बात है ? ब्राह्मणों की इस बस्ती में घूमने वाले इन गन्दे कुत्तों और सर्पों से भी थिय्या लोग अधिक मलीन और भयंकर है क्या ?' ऐसा तीखा प्रश्न करने के उपरान्त बालिका अपने सहज बालसुलभ स्वभाव के अनुसार खेलने लगी। बालिका घर वापस लौट गई और शास्त्री अपने तरुण पुत्र को साथ लेकर उस थिय्या की ओर चल पड़े। सुमति भी मार्ग के समीप में ही स्थित एक घर की ओर चली गई और वहाँ जाकर अपने पिता और थिय्या के बीच कैसे वार्तालाप होता है, यह देखने के लिए खड़ी हो गई।

हरिहर शास्त्री भी तपोवन के समान शान्त और निर्भय प्रतीत होने वाले ब्राह्मणागार से चल पड़े। उधर कोकिला की समधुर कूक गूँज रही थी, गाएं रम्भा रही थीं और साथ ही साथ वेद मन्त्रों की पावन ध्वनि की गूंज भी सुनाई दे रही थी। एक स्थान पर दो तीन शास्त्री बड़ी गम्भीरता सहित प्रदक्षिणा के समय दोनों पैरों में कितना अन्तर होना चाहिए इस सम्बन्ध में स्मृति में कोई सुनिश्चित और स्पष्ट व्यवस्था की गई है अथवा नहीं, इस महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करने में लीन थे। शास्त्री अन्ततः वहाँ जा पहुँचे जहाँ कम्बु खड़ा हुआ था और पर्याप्त दूरी पर खड़े होकर उससे वार्ता करने लगे। कभी कुछ मन्द और कभी थोड़ी तेज आवाज में उनकी वार्ता होने लगी। बातचीत करते करते कम्बु ने कहा, "आप इस सम्बन्ध में कोई शंका न कीजिए महाराज ! जिस घर में सुरंग लगाई जाती है, उसमें सुरंग लगते ही कोई गड़बड़ दृष्टिगोचर नहीं होती। परन्तु यदि उस घर में निश्चित रूप से निवास करने वाले लोगों को कोई व्यक्ति यह कहे कि इस घर में सुरंग लगाए जाने की बात ही गलत है तो यह एक खोटी बात होगी। किन्तु जब घर के नीचे लगी हुई सुरंग में सहसा ही विस्फोट होता है, तभी उस घर में निवास करने वालों को सत्य का साक्षात्कार हो जाता है, और उस समय सुरंग लगाए जाने की बात को गलत कहने वाले के भुलावा डालने वाले प्रपंच का पता लगता है। आज आपकी ब्राह्मण बस्ती की स्थिति भी ऐसी ही है। उस मौलवी ने मुझे कई बार कहा है कि तुम्हें व तुम्हारे थिय्या बन्धु-बान्धवों को उस मार्ग से भी अनिष्ट होने की आशंका से जाने नहीं दिया जाता जिस पर कुत्ते स्वच्छन्द घूमते हैं। यदि इन्हीं ब्राह्मणों और मराठों की पुत्रियों को लाकर उन्हें तुम्हारे साथ न रख दूँ तो मैं मौलवी नहीं ! जो भी थिय्या आज मुसलमान बनेंगे तथा शीघ्र ही होने वाले विद्रोह में भाग लेंगे उनमें से प्रत्येक को उनकी मनपसन्द ब्राह्मण कन्या एक मास की अवधि के भीतर ही सौंप दी जाएगी। महाराज क्रोध न कीजिए। मालाबार में आज यों तो कोई गड़बड़ नहीं दिखाई देती, आज आपके इस शान्त तपोवन में जहाँ कोकिला की मधुर तान सुनाई पड़ती है वहाँ ही मोपला मुसलमानों द्वारा राक्षसी धर्मयुद्ध की भयंकर सुरंग बिछाई जा रही है।"

"उस थिय्या के इस कथन का शास्त्री महोदय पर भी थोड़ा-सा प्रभाव हुआ और उन्होंने कुछ चिन्तायुक्त आवाज में कहा 'उस मौलवी सरीखे दस-पाँच धर्मोन्मत्त लोगों की मारधाड़ से भयभीत हो जाए, ब्रिटिश राज्य इतना दुर्बल है क्या ?'

'दस-पांच धर्मोन्मत्त मौलवी ही नहीं, किन्तु प्रत्येक मोपला इस विद्रोह में शस्त्र धारण कर खिलाफत के लिए उठ खड़ा होगा। इस बात के साथ ही साथ मुझे

उस मौलवी ने यह भी बताया है कि 'अरब-स्थान से गोलाबारूद समुद्र मार्ग से उनके पास पहुँचेगा और इसके साथ ही साथ अफगानिस्तान का अमीर भी ५०-६० हजार सैनिकों सहित हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने वाला है। हमारे विद्रोह करने में अभी कुछ देर है। हम ज्योंही विद्रोह करेंगे उसके तीन मास के उपरान्त ही तुर्कस्थान का ध्वज फहराते हुए अनवर वेग भी हमसे आकर मिलने वाला है।' यह बात वह मौलवी मुझसे बारम्बार कहता है।"

"यह अनवर वेग कौन है ?"

"वह तुर्क है और उसे हिन्दुस्तान के मुसलमान सम्पूर्ण विश्व के मुसलमानों को स्वतन्त्र करने के लिए जन्म ग्रहण करने वाला ईश्वरीय वीर समझते हैं।"

"अरे, किन्तु यदि वह अनवर तुर्क है तो यह तो बताओ कि वह इन मोपलों का कौन लगता है ? ये मोपले तो हमी हिन्दुओं के वंशज हैं न।"

"महाराज आप भूल कर रहे हैं। वे तो अपने-आपको अरब-स्थान के मुहम्मद के कुरेशी वंश का समझने लगे हैं। एक बार अरबी अथवा किसी कुरेशी द्वारा तो हिन्दू के प्रति किसी ममत्व भावना का प्रदर्शन किया जाना संभव है; परन्तु ये मोपले--हम हिन्दुओं के ही वंशज, हिन्दुओं के प्रति उतनी ममता का प्रदर्शन नहीं करेंगे। दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व भी एक बार मोपलों ने दंगा किया था। क्या उन दिनों इन्होंने अरनाड तालुका के अनेक हिन्दुओं को बलात् मुसलमान नहीं बनाया था? क्या उन्होंने मुसलमान न होने वालों की हत्याएँ नहीं की थीं ? उस समय का आपको स्मरण होगा ही !"

"क्या कहते हो। वह दंगा करने वाले ये मोपले ही थे ?" किसी मर्मभेदक जानकारी के उपलब्ध होने पर मानव मन में चिन्ता का उद्भव होना स्वाभाविक ही है। अतः शास्त्री महोदय भी चिन्तामग्न हो गए। यों तो उस दंगे में क्या कुछ हुआ था इसका विचार भी कुटुम् ग्रामवासी ब्राह्मणों तथा अन्य हिन्दुओं ने कभी नहीं किया था। क्योंकि वह घटना उनके ग्राम में नहीं हुई थी और दूसरे ग्राम में क्या होता है उसके सम्बन्ध में विचार करने की सजगता यदि हिन्दू समाज में होती तो वह दुर्दिन ही क्यों उपस्थित होता। किन्तु हरिहर शास्त्री को इस दंगे की इतनी तीव्र स्मृति हो आने का कारण भी इतना ही तीव्र था। वह कारण यह था कि उनकी अपनी नानी को उस दंगे के समय पास के ग्राम के मुसलमानों ने उनके घर से उठाकर बलात् एक वर्ष तक एक मुसलमान के घर में रखा था और अन्ततः उस साध्वी ने अन्न जल का परित्याग कर अपने प्राण समर्पित कर दिए थे। यह स्मृति आते ही कि उसके साथ मोपलो ने क्या किया था, शास्त्री महोदय के हृदय पर एक तीव्र आघात-सा लगा। कम्बु थिय्या ने जो कुछ कहा था उससे उनके मन पर भयंकर आघात लगा था किन्तु वे पुनः विचारने लगे और बोले "क्या कहते हो ? ये मोपले पुनः उपद्रव करने वाले हैं ? किन्तु क्यों भाई, अपने इस कुट्टम् ग्राम में तो कभी ऐसा नहीं हुआ। उसका कारण भी है और वह यह कि इस ग्राम में मोपलों के पाँच-छह ही तो घर हैं; और फिर ये तो हैं भी निर्धन। साथ ही ये धर्मान्ध भी तो नहीं। ये अपने ही ग्राम के अस्पृश्य हिन्दुओं के तो वंशज हैं। जो कुछ होगा वह तो अरनाड तालुका में होगा। अपने ग्राम में तो ऐसा कोई खतरा दिखाई नहीं देता।"

"महाराज" क्या कहा कि इस ग्राम पर कोई संकट नहीं आएगा ? अहो ! हिन्दू अस्पृश्यों के ही वंशज जो चार-पाँच मोपला कुटुम्ब आपको गरीब दिखाई देते

हैं, उन्हीं के साथ वह मौलवी भी है न। वही मौलवी जिसने मुझे तथा मुसलमान होने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक थिय्या को उनकी मनपसन्द ब्राह्मण व नायर कन्या अर्पित करने की घोषणा की है। इस बार सभी मोपले एक साथ ही विद्रोह आरम्भ करने वाले हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि अरनाड तालुका में निवास करने वाले हिन्दुओं के समक्ष भले ही भयंकर संकट उपस्थित हो जाए किन्तु आपके इस कुटुम् ग्राम में शान्ति ही बनी रहेगी तो मैं सोचता हूँ कि क्या अरनाड तालुका के हिन्दुओं के समक्ष उपस्थित होने वाले भयंकर संकट में हम भागीदार नहीं बनेंगे ? उनकी स्त्रियों और बच्चों पर जो संकट आएगा वह संकट अपने ही परिवार पर आया है, क्या ऐसा समझकर आप उनकी सहायतार्थ नहीं दौड़ेंगे ? क्या वहाँ के हिन्दुओं की बहनें आपकी बहनें नहीं हैं ? क्या उनके देवालय आपके देवालय नहीं हैं ? यदि उनका नाश हुआ तो भी तो अपना ही नाश होगा। 'जहाँ सर्व हिन्दू जाति के सुख-दुःख का प्रश्न है वहाँ तो हमें पेशावर से महारवाड़े के हिन्दू की झोंपड़ी को पर-मेश्वरम् नगर की सीमा तक स्थित हिन्दू घर के समान ही समझना चाहिए। क्या आज अरनाड के हिन्दू पर आया संकट कुटुम् के लोगों के लिए संकट नहीं होगा ? अरनाड के मुसलमानों ने तुम हिन्दुओं की पुत्रियों का अपहरण किया है, तुम्हारी मूर्तियाँ भ्रष्ट की हैं, यह बात जब कोई मुसलमान कहता है तो क्या हमारे मुख पर लज्जा से कालिमा नहीं पुत जाती ? वस्तुतः वह हमारे ही मुख पर जड़ा गया तमाचा है। किन्तु ये सब बातें छोड़िए, मुझे क्षमा करना, मैं आपको स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ, मुझे निष्ठुर कर्त्तव्य के कारण यह कठोर बात कहने पर विवश होना पड़ रहा है कि एकार्थ कांचनलता के समान मोहक तथा प्राणों सरीखी प्रिय, ऐसी जो आपकी कन्या अभी पुष्प वाटिका से आपके घर की ओर गई है, महाराज ! उसके पवित्र सम्मान और जीवन की होली न जलने पाए यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो आप समय रहते सावधान हो जाइए।"

हरिहर शास्त्री का मस्तिष्क ही चकरा उठा। परन्तु मानव स्वभाव बड़ा ही चमत्कारिक है कि अपना अपमान तो वह सहन कर पाता है। किन्तु यदि उसका कोई नाम लेकर अपमान करे तो वह सहन नहीं कर पाता। अपनी प्रिय, सुन्दर तथा सुशिक्षित कन्या का नाम लेकर इस थिय्या ने जो इतनी भयंकर भविष्यवाणी की थी उससे उन्हें अत्यधिक विषाद का अनुभव हुआ। वह हतप्रभ से हो गए थे। अब उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएं उभर आई थीं। किन्तु उन्होंने पुनः अपने विवेक को संवारा और बोले, "कम्बु ! तो बता इस अन्याय के प्रतिकार का उपाय क्या है ? बोल क्या किया जाए। आजकल क्या हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित नहीं हो गई है ? खिलाफत को हिन्दुओं ने अपने धर्म के समान ही अपना प्रश्न बना लिया है। मुसलमान भी अपने वचनों का पालन करेंगे। क्या ऐसा नहीं होगा ? परन्तु तुम कहते हो कि विद्रोह होगा। भला यह विद्रोह हिन्दुओं के विरुद्ध किस लिए किया जाएगा। बताओ न ?"

"महाराज ! इस भावी अनर्थ का प्रतिकार किस प्रकार किया जाए, यदि इस सम्बन्ध में विचार करना है तो उसका प्रथम उपाय यह है कि हम इस विचार का परित्याग करें कि हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य स्थापित हुई यह एकता हिन्दुओं की सुरक्षा की पोषक है। आपने जो वाक्य कहा है, उसका पूर्वार्द्ध ही सत्य है कि हिन्दुओं ने खिलाफत के प्रश्न को अपने धार्मिक प्रश्न के समान ही समझा है, किन्तु

आपके वाक्य का उत्तरार्ध अवास्तविक है। इसका कारण यह है कि हिन्दुओं ने खिलाफत के प्रश्न को अपना प्रश्न बना लिया है अतः मुसलमान भी हिन्दुओं के किसी शब्द की उपेक्षा नहीं करेंगे, आप ऐसा न मानकर यह समझ लीजिए कि हिन्दू अपने वचनों से कदापि विमुख नहीं होंगे, वस्तुतः यही कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इस सत्य स्थिति से हिन्दुओं को परिचित कराना आवश्यक है, जिससे वे असावधानी का परित्याग कर आने वाले संकट का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो सकें। प्रतिकार का पहला उपाय यही है। किन्तु यह उपाय ही अन्तिम उपाय नहीं। क्योंकि हिन्दुओं के आधार पर मुसलमानों ने इस विद्रोह की सिद्धता नहीं की है। वे साथ आएं अथवा न आएं खिलाफत आन्दोलन चलाया ही जाएगा; यही उनकी युद्धगर्जना है! अतः दूसरा त्वरित उपाय जिसको अपनाया जाना आवश्यक है, वह यह है कि हिन्दुओं को स्वसंरक्षणार्थ तत्काल पृथक् निर्णय करना होगा। यह काम तत्काल आरम्भ कर दिया जाना चाहिए। वह मौलवी दो-तीन दिन में ही अरनाड होकर वहाँ होने वाली मुख्य सभा में यह प्रतिवेदन देगा कि कुट्टम् ग्राम के थिय्या लोग स्वेच्छा सहित मुसलमान होने को तैयार नहीं हैं। अन्य जातियों से तो यह बात कही ही नहीं जाएगी। कुट्टम् ग्राम का नाम भी उनके द्वारा उस सूची में सम्मिलित कर लिया जाएगा जिनकी सूची इस दृष्टि से बनाई गई है कि विजय के उपरान्त वहाँ की जनता को बलात् मुस्लिम धर्म स्वीकार कराया जाएगा और जिनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति काफिरों की समझकर लूट लिया जाएगा। इस व्यवस्था के अनुसार हिन्दू स्त्रियाँ भी धर्मवीरों की न्यायसिद्ध लूट का माल बनेंगी। यह भी सुनिश्चित है कि इस लूट में इस पवित्र, निरपराध व लावण्यवती कन्या को वह नीच मौलवी अपने हिस्से में लेगा! महाराज क्रोध न कीजिएगा! मुझ पर क्रोधित न हों, यदि कोध करना ही है तो उन नीचों के प्रति कीजिए जो पापकर्म की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। मैंने तो समय से पूर्व ही एक दुष्टतापूर्ण कृत्य की सूचना और उसके परिणामों और उनसे बचने के सम्बन्ध में आपको सूचित कर दिया है! मेरी बातों की उपेक्षा न कीजियेगा, अपितु उन पर विचार करके इस संकट का सामना करने और अन्यायियों से प्रतिशोध लेने की तैयारी कीजिए।

"कम्बु, तुम चाहते हो वैसा ही होगा। चलो, बताओ कि किस प्रकार से कार्य आरम्भ किया जाए।"

"ठीक है महाराज, सर्वप्रथम मैं अरनाड जाऊंगा जहाँ मुसलमानों का मुख्य केन्द्र है और वहां के नेताओं ने कतिपय हिन्दू-मुस्लिम नेताओं को भी 'स्वराज्य' और एकता का झाँसा देकर चीनी में विष मिलाकर खिलाने जैसा उपक्रम किया है। सर्वप्रथम मैं उन भ्रमित हिन्दुओं को वस्तुस्थिति से अवगत कराने का प्रयत्न करूंगा। यदि वे सही मार्ग पर आ गए तो बहुत अच्छा, अन्यथा आपको कुट्टम् ग्राम के हिन्दू तरुणों को धर्मरक्षणार्थ सुसज्जित करना होगा। थिय्याओं में से भी अनेक तरुण इस कार्य के लिए तैयार हैं।

इसी बीच कम्बु के साथ आया थिय्या युवक बोल उठा 'हां, हां, हम हिन्दू धर्म की रक्षार्थ आत्मबलिदान देने को भी सन्नद्ध हैं।'

"आप पाण्डव शिविर के समान इस ब्राह्मणागार में निश्चिन्त पड़े बन्धु-बान्धवों को सावधान कीजिए, मैं भी अरनाड से वापस आने के उपरांत आपसे पुनः भेंट करूंगा!"

इधर इनकी यह वार्ता चल रही थी, तो दूसरी ओर सुमति जो अपने घर के मार्ग में कुछ समय तक खड़ी रही थी, धीरे-धीरे शास्त्री की दृष्टि उस पर न पड़े,

इस सम्बन्ध में पूर्ण सतर्कता बरतती हुई आगे बढ़ती आ रही थी और ऐसे स्थान पर आकर खड़ी हो गई थी जहाँ से उसे उनकी पूरी वार्ता तो सुनाई नहीं पड़ रही थी. किन्तु अस्पष्ट रूप में वह उसे सुन पा रही थी। वह ऐसे स्थान पर एक नारियल वृक्ष की आड़ लेकर चुपचाप खड़ी हो गई थी जहां से वह उन थिय्यों को स्पष्टतः देख सकती थी। उसे धीरे-धीरे आगे आते हुए उस थिय्या तरुण ने भी देख लिया था। उसने भी उसे अपनी ओर निहारते हुए देखा था। उसने उसके निर्भीक शब्दों को भी सुना था। उसके मन में सहसा ही यह विचार कौंध गया था कि शरीर रचना की दृष्टि से तो इस थिय्या तरुण की तुलना में किसी ब्राह्मण तरुण का भी ठहर पाना कठिन है। किन्तु भला इसे अस्पृश्य समझे जानेवाली कौन-सी बात है? जाति रूप में ऐसी क्या भिन्नता है? परन्तु जो ब्राह्मण और क्षत्रिय सर्पों तक को भी पालते हैं वे इनके प्रति इतनी निष्ठुरता का व्यवहार क्यों करते हैं? अपने हृदय में ऐसे सहानुभूतिपूर्ण विचार रमाए सुमति ने बड़ी ही सावधानी सहित उस थिय्या तरुण पर दृष्टिपात किया और उस तरुण की दृष्टि भी उसकी ओर गड़ गई। उस तरुण के मन में भी यह विचार आया कि उसके साथ वार्त्तालाप करे। उसकी दृष्टि में ऐसी ही सहानुभूति की रेखा को पुनः देख पाने के लिए उसने मन ही मन यह भी निश्चय किया कि वह किसी भी महान कार्य के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर देगा।

इधर कम्बु और शास्त्री महोदय में चल रहा वार्त्तालाप समाप्त हो गया और कम्बु ने साष्टांग दण्डवत् कर शास्त्री महोदय से विदाई ली। उस थिय्या तरुण ने भी चलते-चलते पीछे की ओर निहारा तो उस ब्राह्मण कन्या की वही सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि पुनः उस पर पड़ी। वह भी वृक्ष की आड़ लेकर खड़ी हुई थी। उसके मन में भी सान्निध्य की इच्छा थी और वह युवक की आशा के अनुरूप ही सुन्दर थी।

हरिहर शास्त्री भी धीमी गति से अपने घर की ओर चल पड़े। उनके मन को यही विचार परेशान कर रहा था कि उनकी नानी के साथ जितना भयंकर अत्याचार हुआ था, क्या उनकी अपनी प्रिय पुत्री भी उसी प्रकार के अत्याचार की भेंट चढ़ जायगी! छीः! इन सब विचारों को अपने हृदय में घुलाते रखने का धैर्य वे अब नहीं संजो पा रहे थे। उस वन से वापस जाते हुए वह पुनः उस स्थान से होते हुए अपने घर की ओर जा रहे थे जहाँ स्मृति शास्त्रों में प्रदक्षिणा में दो पैरों में कितने अन्तर की व्यवस्था की गई है इस संबंध में शास्त्री मण्डली में विवाद चल रहा था। उस वाद विवाद में अब बड़ी गर्मी आ चुकी थी। किन्तु शास्त्री महोदय को वह वाद विवाद अब बड़ा कर्कश लगा रहा था और अब इस वाद विवाद ने उनके भय को मानो द्विगुणित कर दिया था और उन्हें लग रहा था कि कहीं कम्बु ने जो कुछ कहा वही तो सही सिद्ध नहीं होगा। ●● (क्रमशः)

"वेद-भाष्य" के अधिक से अधिक सदस्य
बनाकर घर-घर में वेद पहुँचाएँ।

ईशोपनिषद्

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० हरिशरण
सिद्धान्तालंकार कृत प्रभावपूर्ण व्याख्या

१. प्रभु की सर्वव्यापकता

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

(इदं सर्वम्) यह सब (यत् किञ्च) जो कुछ (जगत्यां जगत्) ब्रह्माण्ड में लोक हैं वे सब के सब (ईशावास्यम्) उस प्रभु से पूर्णतया व्याप्त हैं (तेन) इसलिए हे जीव तूने इस संसार का (त्यक्तेन) त्याग भाव से (भुञ्जीथाः) उपभोग करना। (मा गृधः) लालच न करना। (कस्य स्वित् धनम्) भला यह धन किसका है।

All this, whatsoever there is in the various regions of this universe, is pervaded by God through and through. Therefore enjoy this world without attachment. Do not covet. Remember : whose wealth is it ?

यह सब **यत् किञ्च** जो कुछ **जगत्यां जगत्** जगती में **जगत्** लोक हैं, वे सब के सब **ईश आवास्यम्** उस प्रभु से समन्तात् बसने योग्य हैं। कण २ में वे प्रभु समा रहे हैं। सर्वव्यापक हैं इसीलिए तो वे आंखों से दिखते नहीं। नमक का ढेला जब पानी में लटकाया जाता है तो दिखता है, परन्तु पानी में घुल जाने पर—कण २ में व्याप्त हो जाने पर वह दिखता नहीं। एक स्थान पर था तो दिखता

था, पर व्यापक हो गया तो दिखने से ऊपर उठ गया। इसी प्रकार वे सर्व व्यापक प्रभु भी आंखों का विषय नहीं बनते। इस उदाहरण में जहां पानी है वहां नमक भी है, इसी प्रकार सृष्टि के प्रत्येक कण में प्रभु भी हैं। प्रभु की इस व्यापकता को अनुभव करने पर मनुष्य पाप वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है। न वह अपने को अकेला मानता है और ना ही पाप करता है। वह व्यास के इस कथन की सत्यता को अनुभव करता है कि **"एकोहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनि पुराणम्। यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि"** अर्थात् मैं अकेला हूं ऐसा तू मानता है। हृदय में निवास करने वाले इस प्रभु को तू नहीं जानता। ये प्रभु तो वे हैं जो तेरे सब पाप कर्मों को जानते हैं, अरे! उन्हीं के समीप तू पाप करता है।

मंत्र का **'जगती'** शब्द ब्रह्माण्ड का वाचक है। इस ब्रह्माण्ड में पिण्ड अर्थात् छोटे २ जगत् तो अनन्त हैं। हमारे लिये उनकी संख्या को पूरा २ जानना सम्भव नहीं। एक सौर लोक एक जगत् है। इस जगती में तो ऐसे सौर जगत् कितने ही यह हैं। जगती की विशालता इस प्रभु की महिमा का व्याख्यान कर रही है।

'तेन' चूंकि वे प्रभु सर्वव्यापक हैं—कण २ में विद्यमान हैं इसलिए ऐ जीव! तू **त्यक्तेन** त्यागभाव से **भुञ्जीथाः** उपभोग करना। विषयोपभोग में न फंस जाना प्रभु ने भाजन का निर्माण **'पालन'** के लिये ही तो किया है **'भुज् पालनाभ्यवहारयोः,** शरीर के पालन के लिए खाना ही भोजन है। आसक्तिपूर्वक मजा तो वही लेने लगता है जो कि प्रभु से दूर हो जाता है। जो यह अनुभव नहीं करता कि प्रभु सर्वव्यापक है और वे मुझे सदा देख रहे हैं। वेद में स्थान २ पर त्यागपूर्वक उपभोग का संकेत है **'केवलाघो भवति केवलादी'** अकेले खाने वाले को तो उल्लिखित शब्दों में वेद में शुद्ध पाप का सेवन करने वाला कहा है!

मा गृधः—तूने इन विषयों का लालच न करना (**गृध् greed लालच**) इस लालच से ही तो मनुष्य अधिक खा जाता है। विषयों का स्वाद व सौन्दर्य हमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है और हम उन विषयों का शरीर-धारण के लिये नहीं अपितु स्वाद के लिए उपभोग करने लगते हैं। उस समय इन विषयों की प्राप्ति के साधनभूत धन को जुटाना ही हमारे जीवन का लक्ष्य बन जाता है और तब यही धन अन्ततः हमारे **'निधन'** (**मृत्यु**) का भी कारण हो जाता है।

सो यह एक आवश्यक प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है कि **'हम वर्त्तमान में इस लालच से कैसे ऊपर उठें?'** इस प्रश्न का उत्तर वेद इस रूप में देता है कि प्रतिदिन यह सोचो कि **'कस्यस्वित् धनम्?'** भला यह धन किसका है? इसने आज तक किसका साथ दिया। यह तो शरीर धारण के लिये साधनमात्र है। यह हमारे जीवन का साध्य थोड़े ही है? **"नैकेनापि समंगता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति"** इन शब्दों में वृद्ध मंत्री भोज को कत्ल करने के इच्छुक मुञ्ज से कहते हैं कि 'ऐ मुञ्ज, यह धनों की खान पृथ्वी किसी के साथ नहीं गई, शायद तेरे साथ जाये!" इस पंक्ति ने मुञ्ज की आंखें खोल दीं और वह पाप से विरत हो गया। इसी प्रकार **'कस्यस्विद् धनम्'** का विचार हमारी भी आंखें खोल देगा और हम लोभ से ऊपर उठ सकेंगे। तभी हमारा जीवन त्यागपूर्वक उपभोग वाला अर्थात् हविरूप (**हु दान-अदन**) होगा। इस हविरूप जीवन से ही तो हम प्रभु की सच्ची उपासना करने वाले बनेंगे। हमारा जीवन यह कह रहा होगा कि **'ईशावास्यमिदं सर्वम्'**।

'ईशावास्यम्' का अर्थ परमेश्वर से समन्तात् बसने योग्य तो है ही, उस प्रभु का निवास कण-कण में है (वस् निवासे)। साथ ही, 'वस् आच्छादने' से इस शब्द को बनायें तो अर्थ यह होता है कि 'वे प्रभु सारे ब्रह्माण्ड को आच्छादित किए हुए हैं।' हमें भी उस प्रभु का वह अमृतमय आच्छादन प्राप्त है। ऐसी अवस्था में मृत्यु हमारे तक आ ही कैसे सकती है? मेरा तो वह अमृत प्रभु ही उपस्तरण है, वही अपिधान है। उससे आवृत हुआ-हुआ मैं मृत्युगोचर कैसे हो सकता हूँ? इस प्रकार एक प्रभुभक्त पूर्ण निर्भीकता अनुभव करता है। उस प्रभु का सर्वत्र निवास उसे पाप भीरु बनाता है तो उस प्रभु का सर्वतः आच्छादन उसे **'मृत्यु से भी न डरने वाला वीर'** बनाता है। एवं **'ईशावास्यमिदं सर्वं'** का अनुभव करने वाला **'भीरु'** भी है और **'वीर'** भी। पाप से डरता है तो मृत्यु से निडर भी है।

'ईश' शब्द मन्त्र का प्रथम शब्द है, जो स्वामित्व का प्रतिपादन करता हुआ मन्त्र की अन्तिम भावना **'कस्यस्विद् धनम्'** का पोषण कर रहा है। **'धनम्'** यह सम्पूर्ण धन **स्वित्** निश्चय से **कस्य** उस अनिर्वचनीय प्रभु का है। ऐ जीव! तू क्यों इसका अहंकार कर रहा है! धन का वास्तविक मालिक तू नहीं। ईश तो प्रभु हैं, तेरा क्या स्वामित्व! तू अपने को ईश मान बैठता है, लालच वश इसे निर्मर्यादरूप में जुटाता है, और तब वे प्रभु, इन प्रभुमानी पुरुषों की पुष्ट संपत्तियों को एक भूकम्प के धक्के के समान नष्ट कर देते हैं, **'अर्यःपुष्टीर्विज इवामिनाति'**। यह धन लक्ष्मी-प्रभु (**विष्णु**) की ही पत्नी है। जीव की तो यह माता है, सो जीव ने इसका स्तन्य-पान तो करना है, उपभोग नहीं। यही अनासक्तिपूर्वक वस्तुओं का प्रयोग ही मन्त्र का मुख्य आदेश है।

प्रभु दर्शन से इसका तम (अन्धकार) विदीर्ण (नष्ट) होकर यह **'दीर्घ विदीर्णं'** तमा कहलाता है प्रभु का निरन्तर ध्यान करने से यह **'दध्यङ्'** है और बाह्य विषयों में आसक्त न होकर अन्दर ध्यान करने से आथर्वण है (**अथ-अर्वाङ्**)।

भावार्थ—प्रभु की सर्वव्यापकता का हम अनुभव करें। त्यागपूर्वक प्रकृति का उपभोग करें, लोलुपता से दूर रहें। सदा विचारें कि भला धन किसका है? यह विचार हमें आसक्ति से बचायेगा।

२. क्रियामय दीर्घ जीवन

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(कुर्वन्नेव) कर्मों को करते हुए ही (इह) इस लोक में तूने (शतं समाः) सौ वर्ष पर्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की कामना करना। (एवं त्वयि) तेरे विषय में ऐसा ही निश्चय है। (इतः अन्यथा) इससे और प्रकार का मार्ग (न अस्ति) तेरे लिए नहीं हैं। (न कर्म लिप्यते नरे) नर मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता।

Performing, verily, your duty in this world you should desire to live a full hundred years. This alone is required of you, for there is no other right path for you. Action clingeth not such a man.

प्रस्तुत मंत्र में आदेश करते हैं कि (१) इह इस लोक में तथा इस मानव-जीवन में **कर्माणि** कर्मों को **'कुर्वन् एव'** करते हुए ही तूने जीना है। (क) संसार का नियम ही **'क्रिया'** है यह **'संसार'** है, **'संसरति'** निरन्तर चल रहा है। **जगत्** है **गति** में है। कार्लाइल के शब्दों में "What is this universe but an infinite conjugation of the verb to do" यह संसार 'कृ' (करना) धातु के विविध रूपों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इस गतिमय संसार में अकर्मण्य होने का क्या मतलब ? (ख) अकर्मण्यता विनाश व ह्रास से सम्बद्ध है। 'जो पानी खड़ा वह सड़ा' यह प्रसिद्ध ही है। **'पुष्पिण्यौ चरतो जंघे'** चलने वाले की ही जाँघें पुष्ट होती हैं। इन्द्र ने रोहित को यही तो उपदेश दिया कि **'चरैवेति चरैवेति'** गतिमय रह और गतिमय ही रह। (ग) मनुष्य **'आत्मा'** है—अत सातत्य गमने निरन्तर गति (constant motion) वाला है। क्रियाशीलता के अभाव में तो वह **'ख'** अपने मन को ही खो देता है (२) प्रभु का दूसरा आदेश है कि **'शतं समाः'** सौ वर्ष पर्यन्त **'जिजीविषेत्'** जीने की कामना करे। जितना दीर्घजीवी बन सके उतना ही बन। इस दीर्घजीवन के लिये क्रियाशीलता साधन है। मनुष्य खाट पर पड़ता है तो पड़ ही जाता है, यह उक्ति भूलनी न चाहिए। (३) एवं प्रभु ने उपरोक्त दो आदेश देकर कहा कि **'एवं त्वयि'** तेरे विषय में ऐसा ही निश्चय है। **इतः** इससे अन्यथा और प्रकार का कोई मार्ग (**न अस्ति**) तेरे लिये नहीं है। 'कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीना' ही तेरे जीवन का एक मात्र नियम है।

इस पर जीव सोचता है कि (क) इतना लम्बा जीवन क्या करूंगा ? जितना जीवन लम्बा होगा उतने अधिक ही पाप होंगे। पैदा होते ही चला गया बालक अहोभाग्य है कि उससे कोई पाप तो नहीं हुआ (ख) और कर्म करना भी तो भय से रहित नहीं है। कर्म का फल भोगना होगा, फल भोगने के लिए शरीर लेना पड़ेगा।

ऐसे विचारों के उत्पन्न होने से कुछ उदास हुए जीव से प्रभु कहते हैं कि अरे दीर्घ जीवन होगा तो पाप ही क्यों अधिक होंगे ! ऐसा भी तो है कि तू प्रतिवर्ष एक २ क्रतु (यज्ञ) करे और सौ वर्षों के दीर्घ जीवन में तू **'शत-क्रतु'** ही बन जाये। और कर्म के बन्धन से भी तू क्यों भयभीत होता है ? चूंकि **'नरे'** नर में **कर्म न लिप्यते** कर्म लिप्त नहीं होता। नर मनुष्य कर्म के लेप से ऊपर है। **'नर'** वह है जो **न रमते** इन कर्मों में उलझ नहीं जाता। न रम जाना न फंस जाना ही नर का धर्म है। वि-रत होकर कर्त्तव्य को करते जाना ही मार्ग है। इस से चलने वाला लिप्त नहीं होता। उदाहरणार्थ सन्तान को भी प्रभु व राष्ट्र की समझ पालते जाना ही नर बनना है ! ऐसा मनुष्य न ममत्व करता है—न दुःखी होता है। वही अनासक्ति से कर्म करना है। **'विरति'** वैराग्य बन्धन से बचाती है। मैं कर्म को न चिपटूं तो कर्म भी मुझे क्यों चिपटेगा ? **'अनाश्रितः कर्मफलं'** इस गीता वाक्य के अनुसार हम कर्मफल का आश्रय छोड़ कर कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करेंगे तो बन्धन न होगा।

एवं हमें इस संसार में नर बन कर अनासक्तिपूर्वक कर्म करते चलना है और अवश्य सौ वर्ष तक जीना है। "मैं पापी हो जाऊँगा—कर्म मुझे बांध लेंगे' इस अज्ञान को नष्ट करके यह व्यक्ति **'दीर्घतमा'** बना है। सदा अपने लक्ष्य को आंख से ओझल न करने के कारण यह **'दध्यङ्'** है। फलासक्ति न रहने से यह डावांडोल नहीं होता सो **'आथर्वण'** (**न थर्वति**—डावांडोल नहीं होता) हो गया है।

'नर' बनने के लिये यह विचार बड़ा सहायक होता है कि **'एकः प्रजायते जन्तुः एक एव विलीयते'** (मनु) अकेला ही प्राणी आता है और अकेला ही जाता है। वृक्ष की छाया में यात्री इकट्ठे होते हैं और थोड़ा विश्राम करके चल देते हैं। बस इसी प्रकार हम परिवार में इकट्ठे होते है और कुछ देर में अलग अलग होने लग जाते हैं। सो 'मेरा' या ममत्व का यहां प्रश्न ही नहीं।

भावार्थः—हम प्रभु के इन दो आदेशों को सदा स्मरण रखें कि **'सदा कर्मशील रहो'** और **'सौ वर्ष जीने की कामना करो'**।

३. आत्मघात

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(ये के च) जो कोई भी (आत्महनो जनाः) आत्मघाती लोग होते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मृत्यु के अनन्तर (तान्) उन लोकों की ओर (अभिगच्छन्ति) जाते हैं (ते लोका) जो लोक कि (असुर्या नाम) असुरों के लिये हितकर होने से 'असुर्य' इस नाम वाले हैं और (अन्धेन तमसा) घोर अन्धेरे से (आवृताः) आच्छादित हैं।

Those people, who are slayers of their own soul, go, after death, towards those regions which are fit for Asuras (sub-human creatures) and are enveloped in pitched darkness.

प्रथम व द्वितीय मंत्र में निम्न बातें कही कई हैं:—(१) प्रभु की सर्वव्यापकता को अनुभव करना (२) त्यागपूर्वक उपभोग करना (३) लालच नहीं करना (४) प्रतिदिन इस प्रश्न का विचार करना कि 'भला धन किसका है?' (५) जीवन को सदा क्रियामय रखना और नर बनकर काम करना—आसक्ति से ऊपर उठकर (६) तथा सौ वर्ष जीने की प्रबल भावना रखना—तदनुसार ही जीवन को ढालना।

ये छः बातें ही आत्मोन्नति का मार्ग हैं। इसी पर मनुष्य को चलने का प्रयत्न करना है। जो व्यक्ति इन बातों का ध्यान न करके (१) प्रभु को स्मरण नहीं करता वह अपने को अकेला समझ व्यसनों के प्रलोभन से नहीं बच पाता। (२) भोग ही उसके जीवन का लक्ष्य हो जाता है—अपने ही प्राणों व जीवन में रमा रहता है। **'असुषु रमन्ते'** असुर बनकर अपने ही मुख में आहुति देता है **'स्वेषु आस्येषु जुह्वतश्चेरुः'** इसके जीवन में त्याग का कोई स्थान नहीं होता (३) इसकी लोलुपता उत्तरोत्तर बढ़ती है (४) वह समझता है कि धन का वही मालिक है, धन को उससे कौन छीन सकता है? (५) धन की वृद्धि करके यह अपने जीवन को आरामपसन्द बना लेता है इसका जीवन क्रियाशील नहीं रहता और इस प्रकार अनजाने में क्षीण शक्ति होता जाता है। (६) सौ वर्ष जीने की तो कल्पना करके भी यह कई बार व्याकुल हो जाता है। वृद्धावस्था की तकलीफों की कल्पना करके ही घबरा उठता है। इसके जीवन का ध्येय संक्षेप में यही रह जाता है (eat, drink and be merry) खाओ पियो और मोज करो। यही व्यक्ति 'आत्महन्' है—यह आत्मा का घात कर रहा है। प्रभु की ओर न जाकर अन्ततः प्रकृति के पांवों तले यह रौंदा जाता है।

ये के च आत्महनो जनाः—जो कोई भी आत्महन् लोग होते हैं ते वे **प्रेत्य** इस शरीर से प्रयाण करने के अनन्तर **तान्** उन लोकों के **अपि गच्छन्ति** ओर जाते हैं जो लोक कि इस प्रकार की असुरवृत्ति वाले लोगों के लिए हितकर हैं। **(असुर+य) ते लोका** वे लोक **असुर्याः नाम** असुर्य (असुरों के लिये हितकर) इस नाम वाले हैं। ये लोक **अन्धेन तमसाः** घने अन्धेरे से **आवृताः** आच्छादित हैं। इन लोकों में प्रकाश नहीं। पशु देखते हैं **(पश्यन्ति)** समझते थोड़े ही हैं। मेमना कितना नासमझ है। वध के लिए उठाये गये वधिक के हाथ को भी चाटता है चूंकि उस हाथ से उसे घास जो मिलता रहा है। वृक्ष इत्यादि तो एकदम अन्तःसंज्ञ ही हैं। उनकी तो चेतना पूर्णतया लुप्त-सी ही है। ये ही योनियां **'असुर्य'** हैं। केवल प्राणपोषण में रत लोगों के लिये भोग-योनियां ही उपयुक्त हैं। सो प्रभु इन आत्महन् असुरों को इन्हीं योनियों में जन्म देते हैं। इनमें रहते हुए वे भोग भोगने में रत रहते हैं। ये लोक **अन्धतमस** व अज्ञान से आवृत है। इनमें ज्ञान का नितान्त अभाव है, यहाँ कर्त्तव्य ही नहीं है, सो कर्त्तव्या-कर्तव्य के विवेक का प्रश्न ही नहीं उठता।

सम्भवतः, इन भोगों के भोग से रजकर—या इस प्रसुप्त-सी अवस्था में पिछले संस्कारों को भूलकर ये चिरकाल पश्चात् फिर मानव जीवन को प्राप्त करेंगे और एक बार इन्हें आत्मोन्नति के मार्ग पर फिर चलने का अवसर प्राप्त होगा।

भावार्थः—हम आत्मोन्नति के मार्ग का आक्रमण करें। कहीं आत्महन् न बन जायें। आत्महन् बनने पर तो असुर्य लोकों में ही हमारा जन्म होगा।

४. निरभिमानिता

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद् देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

वे सर्व व्यापक प्रभु (एकं) एक हैं और (न एजते) बिल्कुल हिल नहीं रहे (मनसो जवीयः) पर मन से भी अधिक वेगवान् हैं। (एतत्) इस प्रभु को (देवा-न आप्नुवन्) देव नहीं पकड़ पाते क्यों कि वे प्रभु तो (पूर्वम्) पहिले ही (अर्षत्) पहुँचे हुए हैं अर्थात् गन्तव्य स्थान पर विद्यमान हैं। (तद्) वे प्रभु (तिष्ठत्) ठहरे ही (धावतः अन्यान्) दौड़ते हुए दूसरों को (अत्येति) लांघ जाते हैं। (मातरिश्वा) मातृगर्भ में बैठने वाला यह जीव भी (तस्मिन्) उस प्रभु में ही (अपः) कर्मों को (दधाति) धारण करता है।

God is one and motionless but all the same swifter than the mind. The Devas could not overtake Him because, being all pervading He is present beforehand at the destination point. Due to His omnipresence, He, though stationary, goes faster than others who run. It is in Him that the individual soul developing in the mother's womb engages in the various activities.

गत मन्त्र की फलश्रुति के बाद प्रस्तुत मन्त्र में सर्वव्यापकता की भावना का ही प्रकारान्तरेण वर्णन प्रारम्भ होता है—वे प्रभु अनेजत् (न एजत्) बिल्कुल हिल

नहीं रहे। खाली स्थान हो तो हिला जाय? जब वे सर्वव्यापक हैं, तो हिलें ही कैसे? सर्वव्यापक न होते हुए भी तो किसी और से स्थान भरा होने के कारण 'न हिलना' हो सकता है। सो कहते हैं, कि 'एकं' वे हैं तो एक। **'एक होते हुए न हिलना तभी हो सकता है'** जबकि वह सर्वव्यापक हो।

मनसो जवीयः—वे प्रभु मन से भी अधिक वेगवान् हैं। मन सर्वाधिक वेग वाला है। एक सैकण्ड में एक लाख छयासी हज़ार मील के करीब इसकी गति है। प्रभु इस मन से भी अधिक वेगवान् हैं। वास्तविकता तो यह है कि **एनत्** इस प्रभु को **देवाः** देव **न आप्नुवन्** नहीं पकड़ पाते। देवों की दौड़ के साम्मुख्य में सब देव इससे पीछे रह जाते हैं, प्रभु जीत जाते हैं। चूंकि जीत का **अभिप्राय** यही तो है कि **'विजय-स्तम्भ** पर पहले पहुँच जाना'। और प्रभु तो पूर्वम् पहले ही **अर्षत्** वहाँ पहुँचे हुए हैं। सर्वव्यापक होने के कारण वे कहाँ नहीं हैं?

तद्, वे प्रभु **धावतः अन्यान्**, दौड़ते हुए दूसरों को **अत्येति**, लांघ जाते हैं—उनसे आगे निकल जाते हैं। और खूबी यह है कि **तिष्ठत्** ठहरे-ठहरे ही। बिना गति किये लाँघ जाना इसलिए तो है कि जहाँ भी पहुंचना है प्रभु वहां पहले से ही है। एवं वे प्रभु सर्वव्यापक तो हैं ही, सौन्दर्य की बात तो यह है कि गतिशून्य होते हुए भी सर्वाधिक गतिमान् हैं। ठहरे हुए भी दौड़ते हुओं से आगे निकल जाते हैं। ठीक-ठीक बात तो यह है कि गतिशून्य होते हुए सबको गति दे रहे हैं। गति के स्रोत हैं।

मातरिश्वा—मातृगर्भ में बढ़ने वाला यह जीव भी **तस्मिन्** उस प्रभु में ही **अप**=कर्मों को **दधाति**=धारण करता है। इसकी भी सारी गति उस प्रभु की शक्ति से ही हो रही है। जीव को तो यह भ्रम हो जाता है कि उसकी अपनी शक्ति है। जैसे ट्राम बिजली से चल रही है, परन्तु संचालक (Conductor) को यह भ्रम हो जाता है कि मैं चला रहा हूं। वस्तुतः इतना ही सत्य है कि चालक चाहे उसे पूर्व में ले जाए और चाहे तो पश्चिम में। परन्तु बिजली रुकी, तो न अब पूर्व में ट्राम चलेगी और न पश्चिम में। अब चालक को अनुभव होता है कि चालक शक्ति मेरी नहीं। इसी प्रकार जीव को अन्त में अनुभव होता है कि कोई और ही शक्ति है जिससे कि यह शरीर रूप यन्त्र भी चलाया जा रहा है **'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रा-रूढ़ानि मायया'** इस गीता वाक्य के अनुसार प्रभु ही अपनी शक्ति से यन्त्रारूढ़ सब प्राणियों को घुमा रहे हैं। तत्त्वद्रष्टा देखता है कि प्रभु ही चला रहे हैं, मैं तो निमित्त-मात्र हूं। सो मैंने क्या गर्व करना?

परन्तु प्रश्न तो यह है कि ऐसा है तो प्रभु पूर्व व पश्चिम में भी जाने की स्वतन्त्रता क्यों देते हैं? अर्थात् प्रभु अपनी शक्ति देकर जीव को उसका स्वतन्त्र प्रयोग क्यों करने देते हैं? प्रभु की पूर्ण अधीनता में ही क्रिया होगी तो ठीक ही होगी और परिणामतः कष्ट न होगा।

यह बात ठीक है। परन्तु यह बात ऐसी है कि यदि अध्यापक ही गणित के प्रश्न में प्रत्येक अंक स्वयं लिखाते जायें तो प्रश्न तो ठीक ही निकलेगा पर क्या कभी विद्यार्थी को प्रश्न निकालना आएगा? स्पष्ट है कि 'नहीं'। इसी प्रकार जीव की योग्यतावृद्धि के लिए उतना स्वातन्त्र्य आवश्यक ही है। पर इतनी स्वतन्त्रता मिल जाने पर भी यह सत्य तो सत्य है ही कि प्रभु की शक्ति से यह सारा ब्रह्माण्ड गतिमय है। जीव को इस गति के देने वाली शक्ति का गर्व नहीं करना चाहिए।

भावार्थ—हम प्रभु की सर्वव्यापकता को कण-कण में उसकी अनुभव करें। शक्ति को काम करता हुआ समझें और गर्व से ऊपर उठें।

५. वह परावर प्रभु

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

(तद् एजति) वह प्रभु गति करते हैं और (तत् न एजति) वे गति नहीं करते। (तत् दूरे) वे दूर हैं और (तद् अन्तिके) वे समीप भी हैं। (तद् अस्य सर्वस्य अन्तः) वे इस सारे ब्रह्माण्ड के अन्दर हैं। और (तद् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः) बाहर भी हैं।

God moves and he moves not; He is far and He is near; He is within all this and he is also outside all this.

प्रस्तुत मन्त्र प्रभु की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करता हुआ काव्य की दृष्टि से विरोधाभास अलंकार का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। कहते हैं कि **तद्** वे ब्रह्म **एजति** गति करते हैं और **तत् न एजति** वे गति नहीं करते। ये दोनों वाक्य स्पष्ट ही परस्पर विरोधी अर्थ वाले प्रतीत होते हैं, परन्तु यह विरोधाभास परिहृत हो जाता है, जबकि प्रथम वाक्य में प्रेरणार्थक धातु मान कर (अन्तर्भावितण्यर्थ) हैं। अर्थ यह कर देते हैं कि प्रभु सारे ब्रह्मांड को गति दे रहे हैं। **एजति एजयति** शरीर चलता प्रतीत होता है, परन्तु यह सब गति **अन्तस्थित** आत्मतत्त्व के ही तो कारण है, सो आत्मा ही तो गति दे रहा है। इसी प्रकार सारे ब्रह्माण्ड की आत्मा वे प्रभु हैं—उन्हीं से यह सारी गति दी जा रही है। परन्तु सर्व-व्यापक होने के नाते वे स्वयं तो गतिशून्य हैं। वे कहां जावें और कहाँ आवें—वे तो पहले से ही सब स्थानों में विद्यमान हैं।

तत् दूरे—वे प्रभु दूर से दूर हैं, **तद् उ अन्तिके** और वे समीप से समीप हैं। दूर भी हैं—समीप भी। इस प्रकार विरोध का आभास होता है, परन्तु अभिप्राय इतना ही है कि सर्वव्यापक होने के कारण हम कल्पना से जितनी भी दूर पहुंच सकते है प्रभु वहाँ है ही और हमारे अन्दर भी होने से समीप से समीप भी है। पर से पर तथा अवर से अवर होने से ही प्रभु का नाम **'परावर'** है।

तत्—वे प्रभु **अस्य सर्वस्य**—इस सारे ब्रह्माण्ड के **अन्तः** अन्दर हैं और **तद् उ**—वे प्रभु ही **अस्य** इस सर्वस्य सारे जगत् के **बाह्यतः** बाहर भी हैं। अन्दर होते हुए वे प्रभु अन्तर्यामी हैं तथा बाहर होने से सबको आच्छादित करके सुरक्षित कर रहे हैं। अन्दर व्याप्ति की भावना **'वस् निवासे'** धातु के द्वारा 'ईशावास्यम्' शब्दों से व्यक्त हुई है तथा **'वस आच्छादने'** धातु से गर्भ में सुरक्षित रखने की भावना व्यक्त हो रही है।

भावार्थ—प्रभु दूर से दूर व समीप से समीप हैं। अन्दर व बाहर सर्वत्र व्याप्त हैं।

६. सन्देह और घृणा से दूर

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति

(यः तु) जो तो (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (आत्मनि एव) उस सर्वव्यापक, प्राणतत्त्व में ही (अनुपश्यति) अपने स्वरूप को देखने के साथ देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में (आत्मानं) परमात्मा को देखता है (ततः) फिर (न विचिकित्सति) किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता ।

He who after realising himself sees all creatures in that all pervading Atma and also that Atma in creatures, his doubts are totally removed.

प्रभु की सर्वव्यापकता—अन्दर बाहर सर्वत्र उसकी सत्ता का अनुभव करने वाला व्यक्ति सब प्रकार के संदेह व घृणा से ऊपर उठ जाता है । इस बात को प्रस्तुत मंत्र इन शब्दों में कहता है कि **'यस्तु** जो तो **सर्वाणि भूतानि** सब प्राणियों को **आत्मनि** उस सर्वव्यापक आत्मतत्त्व में एव ही **अनुपश्यति** अपने स्वरूप को देखने के साथ देखता है, **च** और **सर्वभूतेषु** सब प्राणियों में **आत्मानं** परमात्मा को देखता है **ततः** फिर **न 'विचिकित्सति'** किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता है । **'विचिकित्सति'** का पाठान्तर **'विजुगुप्सते'** शब्दों से कहा गया है । संदेह ही घृणा के रूप में प्रकट होती है । मैं ट्रेन में सफर कर रहा हूं । मेरे समीप व्यक्ति बैठा है और मैं उसे भी अपनी तरह एक आदमी के रूप में देख रहा हूँ । मुझे किसी प्रकार की शंका नहीं, ना ही घृणा है । पर इतने में किसी बात से मुझे उसके भंगी व मेहतर होने का ध्यान होता है । इस ध्यान के होते ही मुझे अपने अपवित्र होने की शंका होने लगती है और उस मनुष्य से घृणा । मैं अब उसे मनुष्य के रूप में न देखकर भंगी के रूप में देखने लगता हूं । दूसरा उदाहरण देखिये:—मैं खोये का लड्डू खा रहा हूं—बड़ा प्रसन्न हूं । अचानक एक काली-२ चीज मुझे दीखती है । मुझे मक्खी होने का शक होता है । घृणा-सी हो जाती है । जी मचलने लगता है । मेरे आतिथेय (Host) समीप आकर जानना चाहते हैं कि क्या है ? देखकर कहते हैं कि यह तो छोटी इलायची है । मैं भी ध्यान से देखता हूं । हां, है तो इलायची । शक गया, घृणा गई ।

प्रभु का दर्शन हमें शक व घृणा से ऊपर उठा देता है । घृणा तो सबको मनुष्य के रूप में देखने से ही नहीं रहती और यदि हम प्रत्येक प्राणी को प्रभु के निवास स्थान के रूप में देखने लगें तब तो आदर व प्रेम की भी भावना ही जाग उठे । एक व्यक्ति गुरुद्वारे के सामने क्यों झुकता है ? साथ वाले मकान के सामने क्यों नहीं झुकता ? केवल इसी लिए कि गुरुद्वारे को वह प्रभु का निवास स्थान समझता है । प्रभु का निवास स्थान समझ कर जैसे वह एक स्थान को आदर देता है, इसी प्रकार सब भूतों में प्रभु को देखने वाला सब भूतों से प्रेम करता हैं । यह उन्हें आदर से देखता है । उसके भंगी होने के भ्रम को दूर करके अब वह उसे भी प्रभु मन्दिर रूप में देखता है । **विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः** । इस गीता वाक्य के अनुसार पण्डित सब में समरूप से अवस्थित प्रभु को ही देखते हैं । यह सर्वत्र प्रभु दर्शन ही सच्चा वेदान्त है । ऐसा देखने वाला व्यक्ति निर्भीक व निर्घृण होता है । घृणा से ऊपर उठा हुआ यह प्रेम का पुञ्ज ही बन

जाता है। इसका ज्ञान सब उपाधियों से ऊपर उठा हुआ है। सो वह सचमुच 'दीर्घ-तमा' दूर हुए हुए अन्धकार वाला हो गया है।

भावार्थः—हम प्रभु को सब में और सब में प्रभु को देखें यही 'तत्त्वज्ञान' है। यही संदेह व घृणा से ऊपर उठने का साधन है।

७. एकत्व का दर्शन

यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

(यस्मिन्) जिस समय (विजानतः) विशिष्ट ज्ञानी के लिये (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणी (आत्मा एव) आत्मा ही (अभूत्) हो जाते हैं (तत्र) उस स्थिति में (एकत्वमनुपश्यतः) एकत्व को देखते हुए के लिए (कः मोह कः शोकः) क्या तो मोह और क्या शोक अर्थात् वह शोक मोह से ऊपर जाता है।

When for the one who has realised himself all beings become Atma, there is no attachment or grief for him as he sees oneness everywhere.

मनुष्य सुनकर व पढ़कर यह जान ही जाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ। यह शरीर तो एक वस्त्र के समान है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' इस गीता वाक्य के अनुसार मृत्यु वस्त्रपरिवर्त्तन मात्र ही तो है। परन्तु व्यवहार में आकर उसे यह बात भूल जाती है। और वह यही कहने लगता है कि 'मैं बीमार हो गया, पतला हो गया।' इस प्रकार उसका ज्ञान उथला ही प्रमाणित होता है। यह 'विजानन्' पुरुष तो आत्मस्वरूप को समझता है, आत्मस्वरूप को समझने के साथ अपने सतत सखा 'प्रभु' को अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप्त अनुभव करता है।

इस **विजानतः** विशिष्ट ज्ञानी पुरुष के दृष्टिकोण में प्रभु ने सबको व्याप्त किया हुआ है। 'प्रभु सब में हैं, सब में प्रभु हैं' यह तो यही देखता है और इस प्रकार देखने के कारण वह परमात्मा ही परमात्मा को देखता है। हार की मणियों को न देखकर वह ओतप्रोत सूत्र को ही देखता है। सो वह सर्वत्र समवस्थित परमेश्वर को ही देखने के कारण सब भूतों में आत्मभाव रखता है। और जब यह सब भूत उस प्रभु में हैं तो उससे अलग हो ही कैसे सकते हैं। मंत्र के शब्दों में तो **यस्मिन्** जिस समय इस 'विजानन्' की दृष्टि में **सर्वाणि भूतानि** सब भूत (प्राणी) **आत्मा एव** आत्मा ही **अभूत्** हो जाते हैं, तब उस स्थिति में **एकत्वम्** एकत्व को **अनुपश्यतः** देखते हुए **को मोहः** क्या तो मोह? और **कः शोकः** क्या शोक? यह विजानन् पुरुष शोक मोह से ऊपर उठ जाता है।

सब आत्माओं का निवास परमात्मा में है और परिणामतः वे हैं तो सही, पर परमात्मा से पृथक् स्थान में नहीं। मेरे शरीर में रहते हुए लाखों कृमि मेरी 'मैं' में ही समाविष्ट हो जाते हैं। 'एक ट्रंक ही है, ऐसा हम कुली से कहते हैं तो क्या ट्रंक के अन्दर कपड़े बर्तन व पुस्तक नहीं होते? हैं, पर वे ट्रंक से भिन्न थोड़े ही हैं? एक पहलवान से चुंगी वाला ५ सेर घी पर तभी तक चुंगी मांगता है जब तक कि वह उसे पी नहीं लेता। पी लेने पर तो घी अलग नहीं रहा। वह तो पहलवान में ही समा गया, सो चुंगी का प्रश्न ही नहीं रहता। गंगा जब तक समुद्र में नहीं मिली तब तक गंगा और समुद्र में मिलते ही गंगा नाम समाप्त है और समुद्र ही

रह जाता है। इसी प्रकार सबआत्माओं को परमात्मप्रविष्ट रूप से अनुभव करने पर सब भूत आत्मा ही हो जाते हैं। सइ एक आदर्श में शोकमोह का स्थान नहीं है।

'द्वितीयाद्वै भयं भवति' भय तो दूसरे से ही होता है। अद्वैत में तो अभय ही अभय है। 'अथो परमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति' जब नाम मात्र भी भेद करता है तभी तो भय होता है। भेद समाप्त भय समाप्त। यहाँ भारत में वह समय था कि 'हिन्दू मुसलिम' एक थे। जामा मसजिद की वेदि से स्वामी श्रद्धानन्द उपदेश कर रहे थे। उस समय कितना प्रेम था कितनी निर्भीकता। १९४७ में हिन्दू मुसलमान दो हो गये। उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव की तरह विरोधी हो गये। तब किस प्रकार एक दूसरे से डरे और किस प्रकार एक दूसरे को समाप्त करने में कल्याण समझने लगे? प्रान्तीय व देशभक्ति द्वैत भावना को पैदा करने के कारण भयजनक हैं। विश्व की 'नागरिकता' व ऐक्य भावना ही मानवकल्याणकारिणी है। पति पत्नी मिलकर एक हो जाते हैं तभी शंका भय दूर होकर वास्तविक प्रेम उत्पन्न होता है। पुत्र भी उनको ही जोड़ने का कारण बनता है और ऐक्य भावना को बढ़ाकर गृह की एकता व शान्ति को बढ़ाता है।

एवं अद्वैतानुभव ही कल्याण है। यही वास्तविकता है। इसको जानकर ही विजानन् पुरुष शोकमोह से अतीत होता है। यह वास्तविकता तो है ही, पर लाभ तभी होता है जब हम इसे जान लें। मेरी जेब में रुपये हैं। पर मुझे उनके होने का ज्ञान न हो तो वे मेरे लिये उपयोगी नहीं हो सकते। इसी प्रकार यह सब आत्मा ही है, ऐसा अनुभव ही मुझे अभय करेगा।

भावार्थः—जीवात्मा व परमात्मा दो सत्तायें हैं। परन्तु सब जीव प्रभु में हैं, सो पृथक् स्थान में न होने से सब आत्मा ही आत्मा है। ऐसा अनुभव करके ही हम 'शोकमोह' से अतीत होंगे।

८. व्यापक व शुद्ध (प्रभु)

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

(सः) वे प्रभु (परि अगात्) चारों ओर गये हुए हैं (शुक्रम्) अत्यन्त उज्ज्वल हैं (अकायम्) शरीर रहित हैं (अव्रणम) व्रणादि से रहित हैं। (अस्नाविरम्) नसनाड़ियों से शून्य हैं (शुद्धम्) पूर्ण शुद्ध हैं और (अपापविद्धम्) पाप से विद्ध नहीं होते (कविः) प्रत्येक वस्तु के तत्त्व को जानते हैं (मनीषी) पूर्ण ज्ञानी हैं (परिभूः) चारों ओर सर्वत्र होने वाले हैं (स्वयम्भूः) स्वयं होने वाले हैं। (शाश्वतीभ्यः) अनादिकाल से (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) ठीक ठीक (अर्थात्) सब बातों व चीजों का (व्यदधात्) संपादन करते हैं।

He (God) is all pervading, brites bodiless, scatheless, without muscles, pure, unpierced by evil wise omniscient transcendent and self existing. He has been making adequate provision for the requirements of His creation since eternity.

सः—वे प्रभु **परि अगात्**—चारों ओर (पहले से ही) गए हुए हैं। वह कौन-सा स्थान है जहाँ कि प्रभु नहीं हैं। सर्वव्यापक होने के कारण ही वे प्रभु **शुक्रम्** (शुच् दीप्तौ) अनन्त दीप्त व उज्ज्वल हैं। जो चीज़ जितनी व्यापक होती है उतनी ही उज्ज्वल हो जाती है—संकुचित होकर वह अपवित्र और मलिन हो जाती है। दान को ही देखिये। विश्व के हित के लिए दिया गया दान हमारे यश को विश्व में फैलाता है तो अपनी बिरादरी के लिए दिया हमारे यश को बिरादरी तक ही सीमित कर देता है। वे प्रभु अत्यन्त व्यापक हैं—वे प्रभु सर्वव्यापक हैं—वे सभी के हित के लिए कार्य करते हैं—अतएव वे पूर्ण शुद्ध हैं।

वे प्रभु सर्वव्यापक न होते, तो उनके देश विशेष में होने के कारण उनकी भी कोई बाह्यरेखा होती। यही उनकी आकृति व काया हो जाती। पर प्रभु तो सर्वव्यापक हैं **अकायम्**—शरीर रहित हैं। शरीर रहित होने से ही **'अव्रणम्'** व्रणादि से रहित हैं। **अस्नाविरम्**—नस नाड़ियों से वह शून्य हैं। व्रणों व नस नाड़ियों का सम्बन्ध शरीर से ही तो है? शरीर नहीं तो ये कहाँ से?

प्रभु का जैसे शरीर से सम्बन्ध नहीं उसी प्रकार उन का सम्बन्ध मन से भी नहीं। मन भी सूक्ष्म शरीर का अंग ही तो है। मन में कुछ मलिनता व रजस् व तमस् का प्रादुर्भाव हो ही जाता है। वे प्रभु तो मन से रहित हैं, सो **शुद्धम्**—पूर्ण शुद्ध हैं और **अपापविद्धम्**—पाप से विद्ध नहीं होते। **'अघशंस'** व्यक्ति हमारे मनों को पाप विद्ध कर देते हैं—प्रभु ऐसी सम्भावनाओं से ऊपर हैं। न उनमें शरीर विकार है न मानसविकार। वहाँ तो शरीर व मन ही नहीं हैं। **कविः**—वे प्रभु क्रान्तदर्शी हैं—प्रत्येक वस्तु के तत्त्व को जानते हैं। लोक में जो-जो व्यक्ति जितना जितना बहुदृष्ट व बहुश्रुत बनता चलता है उतना ही उसका दृष्टिकोण व्यापक व सत्य होता है। उनका दृष्टिकोण पूर्ण सत्य है। वे प्रभु **मनीषी**—विद्वान् व पूर्ण-ज्ञानी हैं। **परिभूः**—चारों ओर सर्वत्र होने वाले हैं। उनके कवित्व व मनीषित्व का रहस्य इस परिभू-पन में ही है।

इस प्रभु को किसने जन्म दिया? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि वे **'स्वयम्भूः'**—स्वयं होने वाले हैं; उनका कोई जन्म देने वाला नहीं। और वास्तविकता तो यह है कि वे शरीर-बन्धन में आते जाते ही नहीं। वह आना जाना जीव के लिए ही सम्भव है जो कि व्यापक सत्ता वाला नहीं।

'ये स्वयम्भू' प्रभु **शाश्वतीभ्यः**—सनातन **समाभ्यः** प्रजाओं के लिये **याथा-तथ्यतः**—ठीक-ठीक **अर्थान्**—सब बातों व चीज़ों का **व्यदधात्**—प्रतिपादन व सम्पा-दन करते हैं। यह तो जीव की ही कमी है कि उन पदार्थों का वह ठीक प्रयोग नहीं करता—वह प्रभु की प्रेरणा को नहीं सुनता और कष्ट का भागी होता है।

भावार्थ—हम इस तत्त्व को समझें कि जो जितना व्यापक है वह उतना ही शुद्ध है। यह समझ कर हमारा ध्येय भी 'व्यापक दृष्टिकोण वाला बनना' ही हो जाय।

९. विद्या और अविद्या

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः।

ये जो (**अविद्याम्**) प्रकृति (**उपासते**) विद्या की उपासना करते हैं (**अन्ध-**

न्तमः) घने अन्धेरे में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। (ततः) उससे (भूय इव) अधिक ही (तमः) अन्धेरे को (ते) वे प्राप्त होते हैं (ये उ) जो निश्चय से (विद्यायाꣳ रताः) ब्रह्मविद्या में फंसे हुए हैं।

Those who pursue material knowledge (Avidya) alone enter blind darkness and they who are entangled in spiritual knowledge alone fall into even greater darkness.

प्रभु को समझने के लिए अब पराविद्या व अपराविद्या से प्रकरण को प्रारम्भ करते हैं। यहाँ मन्त्रार्थ को समझने के लिये उपनिषद् का यह वाक्य स्मरणीय है कि **'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापराच'** परा और अपरा दोनों ही विद्याय समझनी चाहिये। परा वह है जिससे कि उस अक्षर, अविनाशी प्रभु का ज्ञान होता है अर्थात् ब्रह्मविद्या व आत्मविद्या ही 'पराविद्या' है। आत्मतत्त्व से प्रकृति-तत्त्व अपर है सो उसका ज्ञान भी 'अपराविद्या' नाम से कहा गया है। दोनों का ही ज्ञान आवश्यक है तो अपने स्वरूप को जानने के लिए आत्मज्ञान नितान्त आवश्यक है। 'अपराविद्या' और 'पराविद्या' इन दोनों शब्दों में से 'परा' इस सामान्य शब्द को हटा देने पर वेशक 'अविद्या' और 'विद्या' हो गये हैं। यहाँ मन्त्र में इन्हीं का प्रयोग है। ये जो **अविद्याम्**—प्रकृति विद्या की **उपासते**—उपासना करते हैं। (क) वर्तमान संसार में वैज्ञानिक आणविक अस्त्रों से व्याकुल हो उठे हैं। उनको सूझता नहीं कि इनका क्या करें और क्या न करें। (ख) बड़े-बड़े दैत्याकार यन्त्र बनकर इतनी तीव्रता से वस्तुओं का निर्माण कर रहे है कि उनकी बिक्री के लिए मण्डी (Maket) का मिलना दुष्कर हो रहा है। मनुष्यों का स्थान यन्त्रों ने लिया है और इस प्रकार मनुष्य को अप्राप्त-कार्य (Unemployed) कर दिया है। इस प्रकार इस प्रकृति विद्या ने कितनी ही परेशानियां उपस्थित कर दी हैं।

पर क्या ब्रह्म विद्या का कोई कृष्णपार्श्व नहीं है? क्यों नहीं, इसका कृष्ण-पार्श्व और भी अधिक कृष्ण है। भारतीयों का सुझाव आत्मा की ओर अधिक हो गया। वे प्रतिक्षण आत्मा की उपासना में ही बिताने लगे और जब वे परमात्मा की ही रट लगाने में तन्मय थे, इनका ध्यान प्रभु की ही ओर था तो विदेशियों ने अवसर पाकर चुपके से इनके पांव तले से भूमि को खिसका लिया। भारतीयों का ध्यान गया तो इन्हें परतन्त्रतापाश में जकड़ने वालों ने कहा 'आत्मा ही तो सत्य है, उसे तुम रखो। इस मिथ्या संसार को हमें दे डालो। तुम्हारे से फैंकी हुई वस्तु को ही हमने लिया है, तुम्हारे सत्य में हम हस्तक्षेप नहीं कर रहे।' बस इस आत्मरति ने भारतीयों को हज़ार वर्ष तक गुलाम रखा और भूखों मारा। एवं मन्त्र के शब्दों के अनुसार **ततः** उन प्रकृति विद्या के उपासकों से भी **भूय इव**—अधिक ही **तमः**—अन्धकार को वे प्राप्त करते हैं **ये उ**—जो निश्चय से **विद्यायाꣳ रता**—ब्रह्मविद्या में फंसे हुए हैं।

१०. विलक्षण फल

अन्यदेवाहुर्विद्यायाः अन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद् विचचक्षिरे॥

भावार्थ—प्रकृतिविद्या का उपासक अन्धेरे में प्रवेश करता है तो ब्रह्मविद्या का उपासक उससे भी घने अन्धेरे में पहुंचता है।

(विद्यायाः) आत्मिक विद्या का (अन्यत् एव) विलक्षण ही फल (आहुः) कहते हैं। पर (अविद्यायाः) प्रकृति विद्या के भी तो (अन्यत्) विलक्षण फल को (आहुः) कहते हैं। (इति शुश्रुम) इस प्रकार हमने सुना है उन (धीराणां) ज्ञानियों से (ये) जो (नः) हमारे लिये (तद्) इस बात का (विचचक्षिरे) प्रतिपादन करते हैं।

Wonderful is the fruit of spiritual knowledge Vidya as also of material knowledge Avidya ; thus have we heard from the wise who explained these matters to us.

विद्यायाः—आत्मविद्या का **अन्यत् एव**—विलक्षण ही फल **आहुः**—कहते हैं। योगदर्शन का विभूतिपाद आत्मविद्या के फलों का परिगणन करता हुआ **'अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्ति प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः'** इन शब्दों में विशिष्ट सिद्धियों का उल्लेख करता है। लघिमा—हलकेपन की सिद्धि के कारण ही एक व्यक्ति पानी पर भी उसी प्रकार चल लेता है जैसे कि सामान्य व्यक्ति स्थल पर। इसी घटना को देखकर अंग्रेजों ने भारतीयों के चमत्कार से घबरा कर रणजीत सिंह से सन्धि कर ली थी। आत्मविद्या के चमत्कार निश्चित विलक्षण हैं। पर **अविद्यायाः**—प्रकृति विद्या के भी तो **अन्यत्**—विलक्षण फल को **आहुः**—कहते हैं। पानी और अग्नि को वशीभूत करके किस प्रकार यन्त्र चलने लगे। विद्युत् के वशीकरण ने तो हद ही कर दी। हजारों मील दूर बैठे पुरुष से बात भी हो सकती है— आकृति भी देखी जा सकती है। भाषण इस तरह सुने जाते हैं जैसे कि एक फुट पर ही कोई व्यक्ति बोल रहा हो। बेतार की तार एक अद्भुत चमत्कार है। सब काम स्वयं करती हुई मशीन मनुष्य को हैरान ही कर देती है। मनुष्य से बनायी गयी मशीन मनुष्य की अपेक्षा गुणा भाग आदि के प्रश्नों को शीघ्रता से हल कर देती है। युद्ध के यन्त्र भयंकर अवश्य हैं—परन्तु कितने विस्मयकारक हैं। **इति**—इस प्रकार विद्या और अविद्या दोनों के ही फल विलक्षण हैं, हमने उन **धीराणां**—ज्ञानियों से सुना है **ये**—जो **नः**—हमारे **लिये तद्**—इस बात का **विचचक्षिरे**—प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थः—भौतिक व आत्मिक दोनों ही ज्ञानों के विलक्षण फल हैं। भौतिक ज्ञान क्लोरोफार्म आदि के द्वारा हमें अचेतन करके पीड़ा का अनुभव नहीं होने देता तो आत्मज्ञान हमें सदेह होते हुए भी विदेह बनाकर पीड़ा से ऊपर उठा देता है।

११. मृत्यु से तैरना व अमर बनना

विद्यांचाविद्यांच यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

(यः) जो (विद्यां च अविद्यां च) आत्म विद्या और सृष्टि विद्या (तद् उभयं) इन दोनों को (सह वेद) साथ साथ जानता है वह (अविद्यया) सृष्टि विद्या से (मृत्युं तीर्त्वा) मृत्यु को तैर करके (विद्यया) आत्मज्ञान से (अमृतं अश्नुते) अमरता को प्राप्त करता है।

He who knows, side by side, both spiritual knowledge and material knowledge overcomes death by the latter and obtains immortality by the former.

उल्लिखित विलक्षण फलों वाली **विद्यांच** आत्मविद्या को और **अविद्यांच** प्रकृति विद्या को **यः** जो **तद् उभयं** उन दोनों को **वेद** साथ साथ जानता है, वह **अविद्यया** सृष्टि विद्या से **मृत्युं तीर्त्वा** मृत्यु को तैर करके **विद्यया** आत्म ज्ञान से **अमृतं** अमरता को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

मनुष्य दो कारणों से मुख्यतया मृत्यु का ग्रास हो जाता है। एक तो अकाल पड़ जाने से भूखों मर कर, और दूसरे बीमारियों का शिकार होकर। प्रकृति विद्या व विज्ञान ने एक बीघे में २ मन के स्थान पर २० मन अन्न को उपजा कर भूखे मरने के प्रश्न को समाप्त ही कर दिया है, साथ ही मक्खी मच्छरों को समाप्त करके मलेरिया आदि बीमारियों को भी समाप्त कर दिया है। इंग्लैंड आदि राष्ट्रों में प्लेग आदि बीमारियों अब नाम शेष ही रह गई हैं। साथ ही औषधविज्ञान की उन्नति ने टी-बी आदि बीमारियों का भी प्रतिकार कर दिया है और इन बीमारियों की भयंकरता समाप्त ही हो गई है। एवं मनुष्य प्रकृतिविद्या से मृत्यु को तैर गया है। शल्यचिकित्सा के चमत्कारों ने मानवजीवन को दीर्घ कर दिया। संक्षेप में विज्ञान ने मनुष्य के लिये प्रकृति को बड़ा सुखद व सुन्दर बना दिया है। मनुष्य को प्रकृति निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट कर रही है। कई बार तो मनुष्य किसी वस्तु के लिये इतना लालायित हो उठता है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह उसके बिना मर ही जायेगा। बस, आत्मस्वरूप का चिन्तन ही उसे इस मरने से बचायेगा। सो मन्त्र में कहते हैं कि **विद्यया** आत्मज्ञान से **अमृत** अमरता को **अश्नुते** पाता है।

एवं प्रकृतिविद्या भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं को न्यूनता नहीं होने देती और आत्मविद्या उसे न वस्तुओं के मात्रातीत प्रयोग से बचाती है। प्रकृतिविद्या (Underfed) हीन भोजन वालपा नहीं होने देती, क्षीण भोजनता को दूर करती है और आत्मविद्या से वह (Overfed) नहीं होता, अतिभोजन की ओर नहीं जाता।

प्रकृतिविद्या जीवन की मोटर में एन्जिन है तो आत्मविद्या ब्रेक का काम करती है। प्रकृतिविद्या के बिना तो जीवन की गाड़ी चलती नहीं। पर आत्मविद्या न हो तब भी तो यह कहीं न कहीं टकराकर टूट ही जाती है। सो हमें अपने जीवनों में दोनों का ही सम्बन्ध करके चलना है। प्रत्येक गृहस्थ अपनी सन्तानों को विज्ञान की शिक्षा अवश्य दिलवाये और अपने साथ धार्मिक सत्संगों में भी उन्हें अवश्य ले जाये। वैज्ञानिक युवक भूखा न मरेगा और आध्यात्मिक वृत्ति वाला होने से विषयासक्त न होगा। विज्ञान विषयों को उपस्थित करता है, आत्मविद्या उन विषयों में विचरते हुए भी मनुष्य को उनके बन्धन से बचाती है।

भावार्थः—हम अविद्या से मृत्यु को तैरें और विद्या से अमरता का लाभ करें। विद्या से हम विषयों की आपातरमणीयता को जानेंगे और विषयों के पीछे मरेंगे नहीं।

१२. अन्धेरा और घना अन्धेरा

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥

(यः) जो (असम्भूतिम्) व्यक्तिवाद की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धन्तमः) घने अन्धेरे में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। (ये उ) और जो (संभूत्यां) समाजवाद में (रताः) फंसे हुए हैं। (वे) वे (ततः) उससे (भूय इव) कुछ अधिक ही (तमः) अन्धेरे में पहुंचते हैं।

Those who worship individualism alone fall into blind darkness and those who are devoted to social service exclusively fall into still greater darkness.

'सम' शब्द का अर्थ होता है 'मिल कर' और 'भूति' होना। मिलकर होना अर्थात् व्यक्तित्व को अलग न समझकर समाज को ही सब कुछ समझना **'सम्भूति'** है। और इसके विपरीत व्यक्ति को ही प्रधानता दे देना **'असम्भूति'** है। इसमें व्यक्ति केवल निजी हित को देखता है। सामाजिक हित को वह उपेक्षित कर देता है। मंत्र में कहते हैं कि ये जो **'असम्भूति'** व्यक्तिवाद की **'उपासते'** उपासना करते हैं वे **'अन्धन्तमः'** घने अन्धेरे में **प्रविशन्ति** प्रवेश करते हैं। इसका प्रत्यक्ष तो भारत के गत सहस्र वर्षों के इतिहास में हो ही रहा है। चूंकि वहां राजाओं ने केवल अपने २ छोटे राज्य को देखा, देश के दृष्टिकोण से वे न सोच सके। परिणामतः दिल्ली पराजित हुई, कुछ दिनों बाद मथुरा और फिर उज्जैन। और इस प्रकार एक २ करके सभी पराजित हो गये। देश हजारों सालों के लिए गुलाम हो गया। वर्त्तमान में भी रिश्वत क्यों है? 'मेरा कार्य जरा पहले हो जाय' यही भावना तो कार्य करती है। राष्ट्र का नैतिक पतन हमें भूल जाता है। अपने काम से मतलब रहता है। लेने वाला भी अपनी ही जेब को देखता है। राष्ट्रीय पतन की उसे परवाह नहीं रहती।

भारुण्ड पक्षी की कथा में एक मुख अमृततुल्य फल का दूसरे को आनन्द नहीं लेने देता। फिर दूसरा मुख भी उसे मारने की करता है और रोकने पर भी विषफल को खाता है और इस प्रकार दूसरे को तो मार लेता है पर स्वयं भी तो मर जाता है। एवं व्यक्तिवाद में अन्त में अन्धेरा है।

पर क्या अकेला समाजवाद कल्याण कर सकता है। उत्तर यह है कि कल्याण का प्रश्न तो दूर रहा, मंत्र तो कहता है कि **ये** और **सम्भूत्यां** समाजवाद में रताः फंसे हुए हैं **ते** वे **ततः** उस व्यक्तिवादी की अपेक्षा **भूय इव** कुछ अधिक ही तमः अन्धेरे में **(प्रविशन्ति)** पहुंचते हैं केवल समाजवाद को अपनाने वालों की गति व्यक्तिवादियों से अधिक हीन होती है। कारण यह कि व्यक्ति को बिल्कुल उपेक्षित कर देने के कारण व्यक्ति की उन्नति समाप्त हो जाती है और चूंकि व्यक्ति ने ही तो समाज को बनाना है सो व्यक्ति की निर्बलता का परिणाम यह होता है कि समाज एकदम निर्बल हो जाता है। ईंटें कमजोर होंगी तो दीवार मजबूत थोड़े ही होगी। वर्तमान काल में एशिया में समाजवाद ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कुछ अधिक कुचल दिया और परिणामतः वहां अधिनायकवाद ने आकर कितने ही योग्य व्यक्तियों को

समाप्त कर दिया व कैद में डाल दिया। वह सब चीज राष्ट्र के लिये हानिकारक ही हुई।

भावार्थः—व्यक्तिवादी अन्धकार में जाता है तो समाजवादी और भी अधिक अन्धेरे में।

१३. व्यक्तिवाद व समाजवाद का चमत्कार

अन्यदेवाहुः संभवात् अन्यदाहुरसंभवात्।
इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद् विचचक्षिरे॥

(संभवात्) समाजवाद से (अन्यदेव) विलक्षण ही फल (आहुः) कहते हैं। (असंभवात्) व्यक्तिवाद से भी (अन्यत् आहुः) विलक्षण ही फल कहा गया है। (इति शुश्रुम) यह बात हमने सुनी है (धीराणां) उन ज्ञानियों से (ये) जो (नः) हमें (तद्) इस विषय में (विचचक्षिरे) विशेष रूप से बताते हैं।

Wonderful is the fruit of socialism as also of individualism; thus have we heard from the wise who handed these matters to us.

संभवात्—समाजवाद से—मिलकर चलने से—संभूति से, **अन्यत्**—विलक्षण ही फल **आहुः**—कहते हैं, **असंभवात्**—व्यक्तिवाद से भी, **अन्यत् आहुः**—विलक्षण ही फल कहा गया है। **ये**—जो विद्वान् **नः**—हमें **तद्**—इस व्यक्तिवाद व समाजवाद को, **विचचक्षिरे**—स्पष्ट रूप से बतलाते हैं, उन **धीराणां**—ज्ञान के देने वालों से **इति**—यह बात **शुश्रुम**—हमने सुनी है।

समाजवाद के विलक्षण फल इतिहास में रूस व चीन की आधुनिक उन्नति से सुव्यक्त हैं। इङ्गलैंड आदि राष्ट्रों में भी व्यक्ति राष्ट्र के प्रति उदात्त भावना से भरा हुआ है। तभी वे राष्ट्र संसार में सिर ऊंचा किए हुए हैं। इस समाजवाद के परिणाम स्वरूप १९०४ में जापान ने अपने से आकार में कितने ही गुणा बड़े रूस को पराजित कर दिया था। मिलकर चींटियाँ भी हाथी को समाप्त कर देती हैं। सारी मानव जाति यदि एक विचार की हो जाय तो प्रभु को भी परास्त कर सकती है।

व्यक्तिवाद के फल की विलक्षणता शारीरिक दृष्टि से गामा जैसे पहलवानों में प्रकट होती है। बौद्धिक दृष्टिकोण से यह जौन्सन जैसे बौद्धिक दैत्यों में (intellectual giants) में प्रकट होती है और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हजारों वर्षों तक समाधि द्वारा जी सकने वाले योगी इस व्यक्तिवाद के विलक्षण फल को व्यक्त कर रहे हैं।

भावार्थ—व्यक्तिवाद व समाजवाद दोनों के ही फल विलक्षण हैं।

१४. व्यक्ति व समाज का समन्वय

संभूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते॥

(संभूतिञ्च) समाजवाद को व (विनाशञ्च) व्यक्तिवाद को (यः) जो (तद् उभयं) उन दोनों को (सह वेद) साथ २ प्राप्त करता है वह (विनाशेन) व्यक्तिवाद से (मृत्युं तीर्त्वा) मृत्यु को तैर कर के (संभूत्या) समाजवाद से (अमृतम्) अमरता को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

He who follows, side by side both individualism and socialism overcomes death by individualism and obtains immort ality by socialism.

ऊपर दो बातें देखी जा चुकी हैं। (१) संभूति व असम्भूति के फल चामत्कारिक और (२) अलग-अलग वे दोनों ही मनुष्य को अन्धेरे में ले जाते हैं। तो 'ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए ?' इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत मन्त्र इन शब्दों में देता है कि **संभूतिंच**—संभूति व समाजवाद को **विनाशंच**—(वि-नश्) भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाना—मिलकर न चलना अर्थात् व्यक्तिवाद को **यः**—जो **तद् उभयं**—उन दोनों को **सह वेद**—साथ-साथ प्राप्त करता है। (विद् लाभे) वह व्यक्ति **विनाशेन** व्यक्तिवाद से **मृत्युं तीर्त्वा**—मृत्यु को तैर करके **संभूत्या** समाजवाद से **अमृतम्**—अमरता को **अश्नुते**—प्राप्त करता है।

'सह वेद' इन शब्दों से व्यक्ति व समाज को मिला देने का संकेत है। प्रत्येक हितकारी नियमों में व्यक्तिवाद को ही स्थान मिलना चाहिये तो समाज हितकारी बातों में प्रमुखता समाज की रहनी चाहिए। 'शौच-सन्तोष-तप स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान' इन नियमों के पालन में व्यक्ति स्वतन्त्र है तो 'अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह' इन यमों के पालन में वह परतन्त्र है। नियमों का पालन नहीं करेगा तो व्यक्ति ही हानि उठायेगा। पर यमों का पालन न करे तो समाज की ही हानि है सो इनके पालन व न पालन में व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं। इनका पालन तो उसे करना ही होगा।

शौच-संन्तोष आदि का पालन करता हुआ वह असमय की मृत्यु से बचेगा तो अहिंसा आदि के अनुष्ठान से वह अपने समाज को अमर बना पायेगा। आजकल की भाषा में व्यक्ति वैध उपायों से कमाने के लिए स्वतन्त्र है, पर कर देना यह उसकी इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता। 'गृहस्थ बने वा न बने' इतने अंशों में व्यक्ति स्वतन्त्र है। पर ब्रह्मचर्य पालन करे या न करे—'संयत जीवन वाला हो या न हो' यह उसकी इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता। असंयम से वह कितने ही घरों को बरबाद करेगा। एवं व्यक्तिवाद व्यक्ति को उन्नत करता है और समाजवाद इस उन्नत व्यक्ति को समाज के लिए उपयोगी बनाता है।

भावार्थ—हमारे जीवनों में व्यक्तिवाद व समाजवाद का समन्वय हो।

१५. आवरण का हटाना

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

The face of truth is covered by a golden lid, O universal nourisher, remove that we may be able to follow the trhth and see things in there trne true light.

(हिरण्मयेन पात्रेण) स्वर्ण के बने देदीप्यमान पात्र से (सत्यस्य) सत्य का (मुखम्) स्वरूप (अपिहितम्) ढका हुआ है। (पूषन्) सब का पोषण करने वाले प्रभो (त्वं) आप ही (तत्) उस आवरण को (अपावृणु) दूर करिये ताकि हम (सत्यधर्माय) सत्य को धारण कर सकें व (दृष्टये) प्रत्येक वस्तु के वास्तविक रूप को देख सकें।

मनुष्य गत मन्त्रों में वर्णित 'विद्या व अविद्या' में तथा सम्भूति व असम्भूति में प्रायः अविद्या की ओर तथा असंभूति की ओर झुक जाता है। उसका कारण यह है कि **'हिरण्मयेन पात्रेण'** स्वर्ण से बने देदीप्यमान पात्रसे **सत्यस्य** सत्य का **मुखम्** स्वरूप **अपिहितम्** ढका हुआ है। यह संसार की सीपी (शुक्ति) चमकती है और हम इसे चांदी समझ बैठते हैं। यह विषय रूप ताम्र चमकता पीला प्रतीत होता है और हम इसे शुद्ध स्वर्ण के रूप में देखते है। विषयों की आपातरमणीयता से उनका पर्यन्तपरितापिता छिपी रहती है। विष का माधुर्य उसके विषत्व को विस्मृत करा देता है। संसार चमकता है और उस चमक को ही हम सत्य मान लेते हैं। हमें यह उक्ति भूल जाती है कि (All that glitters is not gold) सब चमकने वाली चीज स्वर्ण नहीं है।

वर्त्तमान में मनुष्य की आँखें विज्ञान की चमक से चुंधिया गई हैं। वह केवल अविद्या में फंस गया है, विद्या से वह दूर हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ में फंसा जा रहा है; परार्थ से वह नितान्त विमुख है। यह सब मोह का परिणाम है। प्रभु कृपा से ही यह मोह का आवरण हटेगा। सो मन्त्र में कहते हैं कि ऐ **पूषन्** सबका पोषण करने वाले प्रभो त्वं आप ही **तत्** उस आवरण को **अपावृणु** दूर करिये ताकि हम **सत्यधर्माय** सत्य को धारण कर सकें। उपरली चमक से ही हम विमुग्ध हो न जायें, **दृष्टये** चीज के वास्तविक रूप को देख सकें। जब प्रभु कृपा होती है और हमारी आखों पर से मोह का आवरण दूर हो जाता है तो हम प्रकृतिविद्या के कारण इन चीजों का अतियोग न करके यथायोग ही करते हैं तथा केवल व्यक्तिवाद में न फंस कर वैयक्तिक दृष्टिकोण से उन्नत होकर समाजहितकारी विषयों का पालन करते हुए वैयक्तिक सुखों में नहीं फंस जाते। हमारा जीवन सत्य का धारण करने वाला होता हैं। हम सत्य का दर्शन कर रहे होते हैं।

भावार्थ—प्रभु कृपा से हम इस प्रकृति की चमक से मुग्ध नहीं हो जाते। और सत्य को धारण करने में तथा तात्त्विक दृष्टि को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

१६. कल्याणतम रूप का दर्शन

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ।।

(पूषन्) ऐ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पोषण करने वाले (एकर्षे) अद्वितीय ज्ञानी (यम)सबका नियमन करने वाले (सूर्य) सभी को प्रकाश व प्रेरणा देने वाले (प्राजापत्य) सब प्रजाओं का कल्याण करने वाले प्रभो आप (रश्मीन्) हमारी ज्ञान व तेज की किरणों को (व्यूह) खूब विस्तृत कीजिये (समूह) और केन्द्रित करिये । ऐसा होने पर ही (ते यत्) आपका जो (कल्याणतमं) अत्यन्त कल्याणकारी (तेजः रूपं) तेजस्वी रूप है (ते तत्) आपके उस रूप को (पश्यामि) मैं देखता हूँ । (यः) जो (असौ असौ) एक २ प्राणी में पुरुष पुरुष है वह (अहम्) सर्वव्यापक (अस्मि) हूँ ।

गत मंत्र के अनुसार आवरण के हट जाने पर प्रभु के कल्याणतम रूप का दर्शन होता है । यह दर्शन करने वाला प्रभु से प्रार्थना करता है कि **पूषन्** ऐ संपूर्ण ब्रह्माण्ड का पोषण करने वाले, **एकर्षे** अद्वितीय ज्ञानी **यम** सबका नियमन करने वाले **सूर्य** सभी को प्रकाश व प्रेरणा के देने वाले और इस प्रकार **प्राजापत्य** सब प्रजाओं का कल्याण करने वाले प्रभो ! आप **रश्मीन्** हमारी ज्ञान की किरणों को **व्यूह** खूब विस्तृत कीजिये व उसे क्रम में स्थापित कीजिए अर्थात् हमारा ज्ञान आपकी कृपा से वैज्ञानिक रीति से सुसम्बद्ध हो । तथा आप हमारी **रश्मीन्** तेजस्विता की रश्मियों को **समूह** केन्द्रित करिये । **'रश्मीन्'** शब्द ज्ञान व तेज दोनों की किरणों के लिये प्रयुक्त हुआ है । प्रभु कृपा से जहाँ हमारी ज्ञान की रश्मियां विस्तृत हों वहाँ हमारी शक्ति बिखर न जाय । ज्ञान का विस्तार व शक्ति का केन्द्रीकरण यह उन्नति मात्र के लिये आवश्यक है ।

ऐसा होने पर ही ऐ प्रभो ! आपकी कृपा से **ते यत्** आपका जो **कल्याणतमं** अत्यन्त कल्याणकारी **तेजः रूपं** तेजस्वी रूप है **ते तत्** आपके उस रूप को मैं **पश्यामि** देखता हूँ । उस हिरण्मय पात्र ने ही तो प्रभु के रूप को हमारे से छिपाया हुआ था । आवरण हटा दिया और प्रभु के तेजस्वी रूप का दर्शन हुआ । यह रूपदर्शन कल्याणतम तो है ही चूंकि इस रूप के दर्शन से पापमात्र का विध्वंस तो हो ही जाता है, एक अद्भुत आनन्द का भी अनुभव होता है ।

इस प्रभु के रूप का दर्शन इस प्रकार होता है कि **यः** जो **असौ असौ** एक प्राणी में अर्थात् सब प्राणियों में वर्तमान **पुरुषः** पुरुष है **सः** वह **अहम्** (अह् व्याप्तौ) सर्वव्यापक **अस्मि** है । 'अस्मि' शब्द यहां क्रियावाचक न होकर निपात है । प्रभु की महिमा सर्वत्र दिखती है । कण २ में उसका रचना सौन्दर्य प्रतीत होने लगता है । इस रूप को देखकर द्रष्टा भी वैसा ही बनने का प्रयत्न करता है ।

भावार्थ—आवरण के हटने पर प्रभु का कल्याणतम तेजस्वी रूप दिखने लगेगा । सर्वत्र उस प्रभु की महिमा का ही दर्शन होगा ।

१७. शरीर व आत्म दर्शन

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ।।

(वायुः) क्रियाशील आत्मा (अनिल) भौतिक नहीं और इसीलिये (अमृतम्)

अविनश्वर है। (अथ) दूसरी ओर (इदं शरीरम्) यह शरीर (भस्मान्तं) भस्म रूप परिणाम वाला है। (क्रतो) ऐ यज्ञादि कर्मों द्वारा शक्ति का संचय करने वाले जीव (ओ३म् स्मर) तू उस रक्षक प्रभु का स्मरण कर (क्लिबे स्मर) शक्ति प्राप्ति के लिये स्मरण कर (कृतं स्मर) अपने कर्त्तव्य कर्म का स्मरण कर।

'आत्मा' शब्द **अत् गतौ** धातु से बना है, इस का ठीक पर्यायवाची शब्द **'वा गतौ'** से बना हुआ 'वायु' है। ये दोनों ही नाम जीव को उस के स्वभाव की सूचना दे रहे हैं। जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है, उष्णता के बिना अग्नि कुछ नहीं; इसी प्रकार 'जीव' हो, और गतिशील न हो, यह नहीं हो सकता। वह तो आत्मा है, वह 'वायु' है। 'अत सातत्यगमने' सतत गमन वाला आत्मा है, क्रिया के द्वारा बुराई का हिंसन करने वाला 'वायु' है। यह आत्मा **'अनिलं'** (न इला) पार्थिव नहीं, भौतिक नहीं। पार्थिव न होने से ही तो वह **अमृतम्** अविनश्वर है। भौतिक चीज नश्वर है, अभौतिक अनश्वर। इस प्रकार संकेत इस बात का भी हो गया कि यदि हम भौतिक से ऊपर उठेंगे तो मृत्यु से भी बच पायेंगे। साथ ही यह सर्वानुभव सिद्ध बात है कि अतिभोजन हमें लेटने के लिये बाधित करता है, मितभोजन हमारे जीवन में स्फूर्ति का कारण होता है। एवं वायु और अमृतम् के बीच में पड़ा हुआ 'अनिलं' शब्द दोनों बातों का संकेत कर रहा है कि (क) अपार्थिवता अभौतिकता, हमें अधिक क्रियाशील बनाती है (ख) और यही अभौतिकता हमें मृत्यु से भी बचाती है।

हमारी प्रवृत्ति भौतिक न हो इसके लिए शरीर के स्वरूप का चिन्तन कितना सहायक हो जाता है। सो मंत्र में कहते हैं। **अथ**—आत्मा अमर है तो दूसरी ओर **इदं शरीरं** यह शरीर **भस्मान्तं**–भस्मरूप परिणाम वाला है। इस मिट्टी में मिल जाने वाले शरीर के भोगों के लिए ऐसा लालायित क्यों होना ? जिस ने साथ ही नहीं देना उसके लिए इतना भी क्या हाथ पैर मारना। कितना व्यर्थ है उस नश्वर शरीर के व्यर्थ के भोगों के लिए छलछिद्र करना।

ऐ क्रतो (क्रतु यज्ञ, power) यज्ञादि कर्मोंके द्वारा शक्ति का संचय करनेवाले जीव **ओं स्मर** तू उस प्रभु रक्षक का स्मरण कर। इसका स्मरण ही तुझे भोगों में फंसने से बचने की शक्ति देगा। **क्लिबे स्मर** तू इसलिए स्मरण कर कि तुझे शक्ति प्राप्त हो। **क्लृपू सामर्थ्ये** से बना क्लिव शब्द सामर्थ्य का वाचक है। प्रभु स्मरण से शक्ति प्राप्त होती है। आचार्य दयानन्द प्रातः सायं प्रभु से अपना संपर्क स्थापित करके अपने जीवन की बैटरी को फिर से भर लेते थे। इसी प्रकार सब मनुष्य अपने में शक्ति भरने का यत्न करते हैं, वस्तुतः इसीलिए वे महापुरुष बन पाते हैं। आधुनिक युग में गांधी जी की प्रार्थना यही कार्य करती थी। उन में नयी शक्ति का संचार कर देती थी।

इसको प्राप्त करके तू अपने **कृतं**—कर्त्तव्य कर्म का स्मरण कर। 'प्रभु स्मरण से शक्ति, शक्ति से कर्म' यह है क्रम जो कि इस कार्य-कारणभाव को स्पष्ट करता है। हमने अधिकार चर्चायें नहीं करनी, कर्त्तव्य का ही स्मरण करना है। कर्म में ही हमारा अधिकार है फल में नहीं।

भावार्थः—आत्मा की अपार्थिवता को और शरीर की भस्मान्तता को स्मरण करें ताकि हमारा जीवन तमोगुणप्रधान न हो। प्रभु का स्मरण करें ताकि शक्ति प्राप्त करके अपने कर्त्तव्य को सुचारु रूपेण निबाह सकें।

१८. निष्पापता

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।

(अग्ने) ऐ आगे ले जाने वाले प्रभो (अस्मान्) हम सबको (राये) धन के (सुपथा नय) उत्तम मार्ग से ले चलिये (देव) हे दिव्य मार्ग को दिखलाने वाले प्रभो! (विश्वानि वयुनानि) हमारे सब कर्मों को (विद्वान्) आप जान रहे हैं। (अस्मत्) हमारे से (जुहुराणम्) कुटिलता को (एनः) व पाप को (युयोधि) पृथक् करिये। ऐसी कृपा के लिए (भूयिष्ठां) बहुत ही अधिक (ते) तेरे प्रति (नम उक्तिं) नमन के वचन (विधेम) कहते हैं।

'धन' संसार का पर्यायवाची-सा शब्द बन गया है। कोई भी कार्य धन के बिना नहीं हो पाता। यजुर्वेद में प्रतिपादित सब यज्ञादि उत्तम कर्म भी तो धन से ही होते है। सो धन अत्यन्त आवश्यक है, पर यही हमें **अशुचि** बना कर **निधन** (मृत्यु) की ओर भी ले जाता है। **साधनभूत** धन प्रायः हमारे जीवनों में साध्य का स्थान ले लेता है। यह हमारे प्रयोजन का साधक व सेवक नहीं रहता, हम ही इस के सेवक हो जाते हैं। हम इसके पति नहीं, अपितु यह हमारा पति हो जाता है और हमें पीस डालता है। उस समय हम टेढ़े-मेढ़े सभी साधनों से इसे कमाने लगते हैं। सब कर्त्तव्य कर्मों को भूल-से जाते हैं। सच तो यह है कि कुछ अन्धे-से हो जाते हैं। सो मंत्र में प्रार्थना करते हैं कि--हे **अग्ने** आगे ले चलने वाले प्रभु! कभी भी न भटकने देने वाले प्रभो! **अस्मान्** हम सब को **राये** धन के लिए, उस धन के लिये (रा दाने) जो कि वस्तुतः दान देने के लिए है, यज्ञों में विनियोग के लिए है, **सुपथा नय** उत्तम मार्ग से ले चलिये। हम कभी भी धन की चमक के वशीभूत होकर अन्याय मार्ग से इस के कमाने का विचार न करें। **ऐ देव** दिव्य मार्ग को दिखलाने वाले प्रभो! **विश्वानि वयुनानि** आप तो हमारे सब कार्यों व संकल्पों को **'विद्वान्'** जान रहे हैं। सो जिस भी समय हमारे मस्तिष्क में गलत रास्ते से धन कमाने का विचार भी उठे उसी समय वहीं उसे समाप्त कर दें। न विचार बीज ही रहेगा और न ही रद्दी कर्माकुर उत्पन्न होगा। Nip the evil in the bud इस बुराई को तो आप गर्भ में ही समाप्त कर दीजिये। अज्ञानपुष्प ही न रहेगा तो कर्माकुर होगा ही कैसे? **अस्मात्** हमारे से **जुहुराणं** कुटिलता को तथा **एनः** पाप को **युयोधि** पृथक् करिये। हम न तो कुटिलता से ही धन कमावें और न ही पाप की कमाई जुटायें। राष्ट्रीय नियमों को तोड़ना ही कुटिलता है। लाईसेन्स्ड वस्तुओं की तस्करी (Smuggling), आयकर ठीक न देने के लिये हिसाब को ठीक न दिखाना आदि सब बातें जुहुराणम् हैं। प्रभु के प्रति पाप है। प्रभु ने नियम बनाया कि 'स्वेदस्य' पसीने की कमाई ही तुम्हारी कमाई हो। पर मैं बिना श्रम के सट्टे के द्वारा, लौटरी टिकटस के द्वारा रुपया कमाना चाहता हूं। यह सब **'एनस्'** है। प्रभु मुझे इन दोनों से ही दूर करें। इस कार्य के लिए ऐ प्रभो! हम तो आप की **भूयिष्ठां** बहुत ही अधिक **नम उक्तिं** नमन की उक्ति को **विधेम** करते हैं।

मुद्रक-प्रकाशक-संपादक—श्रीमती राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिण्टर्स, दिल्ली में छपा।

अमृतसर में आर्य समाज की गति-विधियों की केन्द्र बिन्दु सजग-कर्मठ और आदर्श आर्य महिला रत्न श्रीमती **माता आज्ञावती जी** मन्त्राणी, महिला आर्य केन्द्रीय सभा अमृतसर।

शिमला स्थित
डी० ए० वी० स्कूल
के आचार्य
श्री सत्यप्रकाश जी

●

शिक्षा और प्रचार दोनों क्षेत्रों में
आदर्श-आकर्षक व्यक्तित्व
और
प्रेरणा के स्रोत

●

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

सितंबर १९७२

रजि० नं० डी०
१६३१

बलिदान के प्रतीक : शहीद भगत सिंह